

प्रबोध कुमार सान्याल
कमला दास
अजीत कौर
डॉ० लक्ष्मीनारायण

कृष्णा सोबती
मन्नू भण्डारी
राजेन्द्र यादव
दलीप कौर



गोविन्द मिश्र
गुरदयाल सिंह

अपने-अपने चार बरस

अमृता प्रीतम

मूल्य : वारह रुपये (12.00)

प्रथम संस्करण, 1978

प्रकाशक : सरस्वती विहार
21, दयानन्द मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली

मुद्रक : शब्दशिल्पी
द्वारा, प्रगति प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली

APANE-APANE CHAR BARAS (Collection of Dreams)
Amrita Pritam

आने वाले कल के
किसी फ़ायड और किसी जुंग के नाम।

अपने-अपने चार वरस

यह बात उन सपनों की नहीं, जो चिन्तनशील मनुष्य जागती आंखों से देखते हैं, और अपने चेतन यत्नों से कला के माध्यम के द्वारा उन सपनों को धरती की हकीकत बनाना चाहते हैं—यह सिर्फ अचेतन मन के अंधेरे में किसी ज्ञान को टटोलते सपनों की बात है; और जो साइंसदानों के कथनानुसार हर इंसान की हर रात की नींद का पांचवां हिस्सा होते हैं। बीस फीसदी। और हर इंसान रोज रात को डेढ़ घण्टा सपनों की दुनिया में गुजारता है, यानी पूरी उम्र के बरसों में से करीब चार बरस।

इन सपनों के अर्थ पता नहीं किन-किन चिह्नों और इशारों में लिपटे होते हैं। इनकी गांठें साधारण उंगलियों से नहीं खुलती। इनके आलिम फाजिल कोई फ्रायड और जुंग हो सकते हैं, पर इनकी अहमियत से कोई मुनकिर नहीं हो सकता, क्योंकि इनके वजूद में बीती सदियों के साये होते हैं, और शायद एक कानून में बंधे हुए भविष्य के इशारे भी।

दुनिया का प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सी० जी० जुंग अपनी आत्मकथा में अपने एक सपने के बारे में लिखता है: "जिन दिनों मैंने यूनिवर्सिटी में दाखिल होने के लिए अर्जी भरी थी, लगभग उसी समय की बात है—मुझे एक सपना आया, जिसने मुझे डराया भी, और जिसने मुझे हौसला भी दिया। बड़ी रात थी और कोई अनजान जगह, जहां मैं अंधेरी सरीखी हवा में बड़ी मुश्किल से चल रहा था। देखा, चारों ओर बड़ी गहन धुंध है, और मैंने दोनों हाथों में एक रोशनी

वर्तमान की बाहरी हालतों का भी सपनों में दखल होता है, और जिस्मानी किसी पीड़ा का भी, या उस वक्त की किसी खास चिन्ता का भी। और इसके अलावा चेतन या अर्द्धचेतन अवस्था में किसीके दिए सुझाव का भी वहाँ तक असर पड़ता है, इसकी एक बड़ी अच्छी मिसाल डाक्टर पैट्रीशिया गारफील्ड ने अपनी किताब 'क्रिएटिव ड्रीमिंग' में दी है, जो एक इतालवी लेखक गुओवानी गुआरेस्की की आत्मकथा में से ली गई है कि एक वक्त था, जब लेखक की पत्नी को लगता था कि वह सपनों की कैदी है। वह रोज़ परछाइयों, खाइयों, और डरों-फिक्रों की दुनिया में उसकी कभी न खत्म होने वाली गलियों में घूमती रहती है, और तमाम रात चलती, पैर घसीटती इस तरह थक जाती है कि सुबह उठकर उसमें दम नहीं रहता। उसके डॉक्टर खाविन्द ने उसकी मदद करनी चाही और सुझाव दिया कि वह सपने में पैदल चलने के बजाय साइकिल पर घूमा करे। कुछ दिनों बाद सचमुच यह हो गया कि उसे सपने में साइकिल मिल गई, और कुछ दिन वह बहुत खुश रही। अब वह जागकर पहले-सी थकी नहीं होती थी। पर कुछ दिनों बाद सपने की साइकिल पंक्चर हो गई, और सपनों के वीराने में साइकिल को ठीक करवाने के लिए कोई जगह नहीं थी। पत्नी फिर थकने और हाँफने लगी तो डॉक्टर ने उसको जागती हालत में उसे साइकिल के पहिये को पंक्चर लगाना सिखाया। कुछ दिन सीखने के बाद औरत ने देखा, वह सचमुच सपने में अपनी साइकिल को ठीक कर सकी थी। आगे तो बड़ी खुश थी। अब उसकी साइकिल ठीक चलती थी। कई महीने यह हालत रही, पर फिर एक बार उसके सपने की किसी पहाड़ी से उसकी साइकिल फिसल गई, और वह जख्मी होकर एक खड्ड में गिर गई। और फिर हर रात वह सपने में जख्मी एक खड्ड में पड़ी होती थी। उसे लगा, अब उसका अन्त आ गया है। अब वह कभी (सपने की) गहरी खड्ड में से नहीं निकल सकेगी। उस खाविन्द डॉक्टर ने उसे खड्ड में से निकलने के कई तरीके सिखाए, पर उसकी दलील थी कि उसके हाथ बिलकुल लहू-लुहान हैं, वह किसी पत्थर, पेड़ या हाथ से सहारा लेकर अब खड्ड में से नहीं निकल सकती। और उसे लगने लगा कि वह इस खड्ड में पड़ी-पड़ी मर जाएगी। वह बड़ा निराशामय वक्त था, जब डॉक्टर पति ने उसे सुझाव दिया कि वह एकमन होकर उसे (अपने पति को) जोर से आवाजें दिया करे। वह

उसकी कोई आवाज़ ज़रूर सुन लेगा और वहां पहुंचकर उसे खड्ड में से निकाल लेगा। कुछ दिन वाद सचमुच यह हो गया कि उसकी आवाज़ सुनकर उसका खाविन्द खड्ड के सिरे पर पहुंच गया और उसने रस्सी लटकाकर उसे खड्ड में से निकाल लिया। और इस सपने से वह भयमुक्त हो गई। उसे यकीन हो गया कि आगे यदि कुछ घटा तो वह अपने खाविन्द को आवाज़ दे लेगी। और वह चाहे कहीं हो, ज़रूर उसके पास पहुंच जाएगा···

इस तरह सपनों पर आदिकाल से विचार होता आ रहा है और हो रहा है। पश्चिम में सपनों का अध्ययन पहली वार १८६१ में शुरू हुआ था, और फिर जव १९०० में फ्रायड की किताव छपी थी, सपनों के विश्लेषण के वारे में, तो खोज और गहरी हो गई थी। अव १९५० से सोए हुए इंसान की आंखों की हरकत से, उसके दिल की धड़कन में आई तवदीली से, और उसकी सांस की चाल में आए फर्क़ से सपनों का अध्ययन और भी गहरा हो रहा है।

पर इस विषय में मेरी दिलचस्पी सिर्फ़ यह है कि दुनिया के कुल कलाकारों की ज़िन्दगी में कैसे सपने उनके अचेतन मन का प्रकटीकरण होते हैं, और सपनों का उनकी कला में या उनकी कला का उनके सपनों में क्या और किस हद तक कुछ दखल होता है। दुनिया के प्रसिद्ध चित्रकार पाव्लो पिकासो ने अपना एक सपना अपनी महवूवा फ्रैंकाइस को सुनाया था, जो उसने 'लाइफ विद पिकासो' में लिखा है : "जव मैं वच्चा था, मुझे एक सपना कई वार आता था, जिससे मुझे डर लगता था। सपने में मैं देखता था कि मेरी वांहें और टांगें वहुत वढ़ गई हैं, और फिर उसी तरह अन्दर की ओर मुड़ गई हैं। इतनी कि मेरे गिर्द लिपट गई हैं। और यह क्रिया मेरे आसपास के सभी लोगों के साथ हो रही है—वे पहले फैलते हैं, फिर जुड़कर विलकुल छोटे-से हो जाते हैं। यह सपना मुझे जव भी आता था, मैं एक भयानक पीड़ा में से गुज़रता था।" और फ्रैंकाइस लिखती है : "जव मुझे पाव्लो ने यह सपना सुनाया, मैं जान गई कि उसकी प्रारम्भिक पेंटिंग्ज़ की वुनियाद यही सपना थी, जिनमें वड़े-वड़े हाथों-पैरों वाली औरतें होती थीं और उनके सिर वहुत छोटे होते थे···"

फ्रायड ने सपनों को सेक्स से इतना ज़्यादा जोड़ दिया था कि उसकी थ्योरी वाद में वड़ी हद तक नकारी गई। जुंग ने एक वार हैरान होकर लिखा : "फ्रायड ने कभी अपने-आपसे यह नहीं पूछा कि उसके अन्दर सेक्स के वारे में

'मेरी बीवी की और उसकी बहन की मौत', आखिर किसीका नाम लेना था, वही नाम ले लिए। तब मेरा नया-नया ब्याह हुआ था और ऐसी कोई रुचि मुझमें नहीं थी। पर मैं फ्रायड से झगड़ना नहीं चाहता था। इसलिए झूठ बोला। क्योंकि यही झूठ उसकी थ्योरी को रास आता था। और देखा—यह सुनकर फ्रायड को तसल्ली हो गई···"

इस तरह कई सपनों की तशरीह गढ़ी-गढ़ाई थ्योरियों में ज़बरदस्ती ढाली जाती है। सो, मैं अपनी ओर से किसीके किसी सपने की तशरीह नहीं करूंगी, सिर्फ समय के मनोवैज्ञानिकों के लिए कुछ लेखकों, कलाकारों के सपने इकट्ठे करके दे रही हूं, कच्चे माल की तरह। इनकी तशरीह करना मेरा नहीं मनोवैज्ञानिकों का हक बनता है।

मैक्सिम गोर्की अपनी जीवनी में लिखता है कि एक बार लीयो तालस्ताय ने उससे सपनों के बारे में पूछा, तो उसने कहा, "मुझे बहुत कम सपने आते हैं, जो आते हैं वे याद नहीं रहते। पर दो सपने मुझे याद हैं, और दोनों शायद सारी ज़िन्दगी नहीं भूल सकूंगा।" और गोर्की ने जो अपने दो सपने तालस्ताय को सुनाए, वे ये थे :

"सपने में मैंने ऐसा आकाश देखा जो बीमार था। सड़ा-सा। उसका रंग हरा-पीला था और उसमें गोल-भद्दे-से तारे थे—बेकिरण-बेचमक, जैसे किसी भूखे मर रहे आदमी के बदन पर फोड़े हों। उस सड़े-से आकाश के इन तारों में लाल-सी बिजली चमचमा रही थी। वह बिजली किसी हद तक एक सर्पिणी जैसी थी, और जब भी किसी तारे को छूती तो तारा आकाशमंडल में फैल जाता, और बेआवाज़ फटकर सड़े पानी सरीखे आकाश में लोप हो जाता। फिर एक-एक करके सारे के सारे तारे फट गए। आकाश और भी काला और डरावना हो गया, और मुझे लगा कि जैसे सब कुछ एक ही जगह इकट्ठा होकर उबल रहा हो, और पानी-पानी होकर एक लपसी की तरह मेरे सर पर गिर रहा हो···"

और गोर्की ने अपना दूसरा सपना जो सुनाया था, वह यह है : "बर्फ से ढका एक मैदान कागज़ की बड़ी-सी शीट की तरह दिखता है। ऊपर कोई टीला नहीं, कोई पेड़ नहीं, कोई झाड़ी नहीं, बस कहीं-कहीं बर्फ में गड़ी हुई कोई-कोई टहनी दिखाई देती है। इस वीराने के पार दूर क्षितिज तक एक सड़क का टुकड़ा दिखता है, जो मुश्किल से दिखाई देता है। और उस सड़क पर सफेद-सफेद बूट

अनायास ही चलते जाते हैं।"

ये सपने सुनकर तालस्ताय ने जवाब में एक बूढ़े जमींदार का सपना सुनाया कि एक बार वह जंगल में घूमता-घूमता बाहर वीराने में निकल गया। वहां उसने देखा कि उस उजाड़ में दो टीले हैं। फिर अचानक वे टीले छातियां बन गए, और उनके बीच में एक काला चेहरा उभर आया—जिसके ऊपर दो आंखों की जगह सफेद उभरे हुए फूले थे। उसने देखा कि वह स्वयं एक औरत की टांगों के बीच में खड़ा है, सामने एक बड़ी-सी खाई है जो उसे अपनी ओर खींच रही है। इसके बाद उसके अपने बाल सफेद होने लगे और हाथ कांपने लगे···और तालस्ताय ने कहा, "वह आदमी विषयी था, यह सपना उस जैसे आदमी को ही आ सकता था। पर तू न शराबी है, न विषयी, तुझे ऐसे सपने क्यों आते हैं?" और फिर उसने खुद ही गहरी सांस लेकर कहा, "हमें सचमुच अपने बारे में कुछ पता नहीं होता, कुछ भी नहीं।"

सचमुच हमें किसीको भी अपने बारे में कुछ पता नहीं होता। हम सिर्फ इतना जानते हैं कि इनकी कंपकपाहट कई बार हमारी हड्डियों तक उतर जाती है, इनका खौफ हमारे पिघले हुए खून में जम जाता है, और इनकी खुमारी हमारे माथे की झनझनाहट बन जाती है।

इस संग्रह के लिए जिन भी कलाकारों ने अपने निजी भेदों जैसे सपने मेरे सामने उघारकर रख दिए हैं, मैं उन सबकी शुक्रगुज़ार हूं—अपनी ओर से भी और पाठकों की ओर से भी।

—अमृता प्रीतम

क्रम



प्रबोधकुमार सान्याल

प्रबोधकुमार सान्याल बंगला साहित्य के प्रसिद्ध लेखक हैं। उनका एक यात्रा-वर्णन 'महा प्रस्थान के पथ पर' १९३३ में छपा था। उसकी मुख्य पात्र सान्याल को बदरीनाथ की एक दुकान पर मिली थी—और उस दिन से लेकर सान्याल को उसका सपना लगातार पन्द्रह बरस तक आता रहा। किताब में उसका नाम सान्याल ने 'रानी' लिखा था, पर बाद में जब सान्याल ने अपनी ज़िन्दगी की यादें लिखीं 'बनसपतिर बैठक', १९७४ में, उसमें विस्तारपूर्वक रानी के बारे में लिखा, जिसका असल नाम सावित्री था, और लाड का नाम 'टुनु' था। इस यात्रा-वर्णन की बंगला में एक फिल्म भी बनी थी १९५२ में, और हिन्दी में भी 'यान्त्रिक' नाम से। इस सावित्री के बारे में आज सान्यालजी बताते हैं : "मैंने ज़िन्दगी में सिर्फ एक बार उसके होंठ चूमे थे, और वह होंठ भी आंसुओं से धोए गए थे, पर इस औरत ने मुझे बड़ा दु:ख दिया। ज़िन्दगी में पूरे पन्द्रह बरस वह मेरे सपनों में मेरे साथ रही—हर रात को···अब भी मेरी उम्र के ७२वें बरस में वह किसी-किसी रात मेरे सपने में आ जाती है।"

आज सान्याल साहब ने मेरे पास बैठकर अपने उस पन्द्रह बरस लम्बे सपने की बात इस तरह सुनाई है : "सपने में—पूरा हिमालय पर्वत मुझे उसकी आंखों में दिखता था···चीड़ के वृक्ष उसकी आंखों में हिलते थे···उसने सपने में कभी मेरा अंग नहीं छुआ, सिर्फ उसके होंठ हिलते थे—आहिस्ता से मेरे कानों में हवा की तरह सरकते कहते थे, 'मैं कितनी देर तक सामाजिक बन्धनों में बंधी रहूंगी ? ···तुम मुझे इनसे स्वतंत्र नहीं करा सकते'"

कभी वह कहती, 'मैं मौत के वाद भी तड़प रही हूं…'

सपने में भी एक वंगाली विधवा की तरह उसके वाल कटे हुए होते, सके चेहरे का रंग गंगा के पानी की तरह होता, और वह हमेशा सफेद धोती ं लिपटी हुई होती थी…"

सान्याल के शब्दों में : "उसके हजारों सपनों में कभी भी मेरा घर या शहर नहीं होता था, वह हमेशा मुझे हिमालय पर्वत पर मिलती, जहां से गंगा निकलती है—उस गंगोत्री के किनारे। और वह सपने में हमेशा रो रही होती। मैंने आज तक सपने में भी उसका अंग नहीं छुआ था। सिर्फ कभी-कभी उसके वोल कानों से सुने हैं, 'मुझे इस ज़िन्दगी में से निकाल लो! तुम मुझे दुःख देने के लिए पैदा हुए हो? देखो! तुम हो, मैं हूं, पर तुम मुझे वांहों में नहीं थाम सकते…पर मैं तुमसे दूर नहीं, तुम्हारे साथ हूं…तुम्हें पुनर्जन्म में विश्वास है कि नहीं? तुम्हारा क्या ख्याल है—हम अगले जन्म में मिलेंगे?'…और मैं हर सपने से चौंक-चौंककर जाग जाता था।"

—१५ दिसम्बर, १९७

कमला दास

कमला दास अंग्रेज़ी और मलयालम पाठकों के दिलों में उतर जाने वाली शायरा और कहानीकार है। पिछले बरस (१९७७ में) उसने एक साइको-एनालिस्ट के कहने पर अपने सपनों से कोई अगुवाई लेने के लिए एक डायरी में हर रोज़ सवेरे पांच बजे जागकर अपने सपने लिखे थे। ये सपने कमला दास की उसी डायरी में से हैं :

"देखा—मैं एक बड़े-से हाल में बैठी हुई हूं। बाहर की गली की ओर से लकड़ी के पहियों की आवाज़ आई। एक ऊंची-सी—चरर्-चरर्! मैं जल्दी से उठकर दरवाज़े की ओर गई। बाहर देखा, एक बहुत बड़ा लकड़ी का घोड़ा है, एक बड़े-से मकान जितना, उसके पहिये गली में से गुज़र रहे हैं।"

"अप्रैल के महीने मुझे चार सपने आए—जो एक-दूसरे से कुछ मिलते-जुलते-से थे। देखती—मैं किसीको विदा करने के लिए गई हूं, पता नहीं हवाई जहाज के अड्डे पर कि गाड़ी के स्टेशन पर। इन्तज़ार कर रही हूं—पता नहीं हवाई जहाज़ का या गाड़ी का। पैरों के पास बहुत-सा सामान पड़ा हुआ है। मेरी मां भी पास हैं। हमेशा वाली सफेद खद्दर की धोती पहने हुए। पर यह पता नहीं हम दोनों किसे विदा करने आई हैं। एक सपने में मैं कुली से कह रही हूं कि यह जिसका सामान है, उसका वह इन्तज़ार करे, और उसीसे बख्शीश के पैसे ले। तीस अप्रैल को कालीकट से ट्रंक कॉल आई कि मेरा बाप बीमार है, और दिल के एक दौरे के बाद उन्हें नर्सिंग होम में ले जाया गया है। मैं पहली मई को काली-

कट पहुंची। वहां बाप के पास रही—१२ तारीख तक, उनकी मौत तक। सोचती हूं—मेरे वे चारों सपने शायद मुझे उनकी विदाई का इशारा दे रहे थे।"

"मेरे तकरीबन सभी सपने किसी सफर से सम्बन्धित होते हैं। अकसर देखती हूं कि मैं किसी खुली कार में बैठी, किसी पहाड़ी राह पर जा रही हूं। मेरे सपने में देखा गया चांद बहुत बड़ा होता है, चांदी-रंगा। घर, जो सपनों में देखती हूं,वह कभी भी वह फ्लैट नहीं होता, जहां रहती हूं। कोई बहुत बड़ा घर होता है, ऊंची-ऊंची छतों वाला। घर में बड़े गोल थम्बे होते हैं, और गमलों में लगे पाम के पौधे। वहां अक्सर मेरी दादी रह रही होती हैं (जो मर चुकी हैं) और मेरे दादा का भाई, जो शायर था। अब ज़िन्दगी में मैं उन्हींकी डिक्शनरी का प्रयोग करती हूं। मैंने कभी सपनों में अकेलापन महसूस नहीं किया; यह एक अजीब बात है, क्योंकि वास्तविक जीवन में मैं दुनिया के बिलकुल अकेले लोगों में से एक हूं। मैं सपनों का इंतज़ार करती रहती हूं, और खुशी के उस समय का जो मुझे मेरे सपने ला देते हैं।"

"किसी सपने से जागकर मैं सीधी चौके में जाती हूं, काली कॉफी बनाती हूं और उसमें कुछ चीनी डालकर पीती हूं। फिर अपनी लिखने वाली मेज़ पर बैठकर उसकी ओर ऐसे देखती हूं जैसे वही मेरा मित्र हो। यह मेज़ वह है—जो मेरा सबसे बड़ा बेटा इस्तेमाल करता था, जब हमारे पास रहता था। उसने जब अलग घर बनाया, अपनी मेज़ मुझे दे गया। मेज़ पर एक टाइपराइटर है, चार पुरानी डिक्शनरियां, और एक मेरे छोटे बेटे की तसवीर···"

कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबती हिन्दी की वह कहानीकार हैं जो अपनी एक-एक पंक्ति से अपने पाठक के मन की तहों में उतरती जाती हैं। इस संग्रह के लिए आज कृष्णा सोबती ने अपना वह सपना बताया है जिसके बारे में अपने निजी खत में लिखा है : "अमृता ! बन्द आंखों में कई बार, बार-बार देखे हुए इस सपने को अपने से अलग करते हुए बहुत बड़ी रेजिस्टेन्स थी। तुम नहीं मानीं और आखिरकार लिखवाकर छोड़ा'''वह सपना यह है :

सपने में घोड़ा दौड़ाते-दौड़ाते सीधी सपाट राह पर कटी चली जा रही हूं।

छोटे पहाड़ों के सिलसिले पीछे छूटते चले जा रहे हैं।

घोड़े की रफ्तार तेज़ होती चली जा रही है। घोड़ा है। हवा है। मैं हूं।

आंखों के आगे अब ऊंची बर्फीली चोटियां उभरती हैं।

पहाड़ी रास्ता पतला और संकरा होता चला जा रहा है।

चढाई पंजे-सी सीधी है।

घोड़ा दौड़ाती हूं—तेज़ और तेज़ और घोड़े के अगले पांव ऊंची, फिसलवां ढलान पर।

मैं खुद को मजबूती से टिकाती हूं।

लगाम खींचती हूं और संभालते-संभालते नीचे देखती हू।

दाहिनी ओर नीचे। देखती हूं और दहल जाती हूं।

गहरी अंधेरी खड्डों से भी गहरी खाइयां। मैं घबराहट में रकाबों में से

पांव निकालना चाहती हूं···

मैं गई ! बच नहीं सकती।

नहीं ! खबरदार !

तुरंत आंखें खोलती हूं और संभालने की कोशिश में आगे देखने लगती हूं।

चट्टानें, चोटियां और आसमान।

बर्फीले मस्तक पहाड़ों के।

ऊपर-ऊपर—सामने दीखने लगी हैं नीली धाराएं पानी की।

मैं लगाम से थपथपाती हूं घोड़े को और पानी की धार में खड़ा कर देती हूं—इतने लम्बे सफर के बाद मेरे गाज़ी बादशाह पानी पियो।

घोड़ा सिर झुकाता है पानी की धार में···

मैं लाड़ से सहलाती हूं।

यह क्या—घोड़ा क्या हुआ ! कहां गया ! क्या गुम हो गया ! मगर कहां !

सिर्फ मैं खड़ी हूं। और खुद ही अपने को उठाए हुए हूं।

झाड़कर देखती हूं। घोड़े के पांव मुझे तो नहीं लग गए।

लग गए होंगे···

ज़िन्दगी के हर मोड़ पर कुछ न कुछ खोते चले जाने पर मैं जिस तरह अपने को बहला लिया करती हूं कि भूल जाओ—जाने दो—उसी तरह ऊंचे पहाड़ों की ओर देखती हूं और अपने को दिलासा देकर कहती हूं:

यहीं कहीं घोड़ा होगा !

न भी होगा तो क्या···

पांव तो हैं न अपने।

अपने पांव···

—कृष्णा सोबती"

अजीत कौर

याद नही आता किसकी पंक्ति है, कहां पढी थी, पर वह मेरे स्मृति-पटल पर अंकित है : "Man is literally a God, a God suffering from nightmares" और आज यह पंक्ति अजीत कौर के सपने पढकर मुझे बार-बार याद आ रही है। अजीत कौर पंजाबी की एक बहुत अच्छी कहानीकार है, उसके सपने ये है :

"सलाखें···बेइन्तहा सलाखें। पिंजरे बहुत बडे। पिंजरों की सलाखें जैसे इधर से धरती मे और ऊपर से आसमान में गडी हुई हो। पीली-भूरी मिट्टी में धंसी हुई, और नर्म नीले गुंधे हुए मैदे सरीखे आसमान मे गड़ी हुई। और सलाखों के पीछे चीखती हुई मैं 'नही, मैं पागल नही। मैं बिलकुल ठीक हू। मैं तो बिलकुल ठीक हूं।'

पर लगता है जैसे बहुत-से लोग—लोगों की भीड़ की भीड़, जो सलाखों के उस ओर खड़ी है, चल रही है, हंस रही है, बातें कर रही है, बेनियाज़ मेरे दर्द से, उस भीड़ में से कोई भी मेरी बात पर एतबार नही करता। और मेरी जान जैसे अकुला रही है। अजीब बेबसी। बेबस तिलमिलाहट। अकुलाहट। उमस-भरी बौखलाहट। मेरी जान जैसे फैसला करके चीख रही है कि अगर इन सलाखों में से मैं नहीं निकल सकती तो बेशक मौत आ जाए। अगर ये सलाखें जरूर रहनी हैं, तो फिर पसलियों की सलाखें मंजूर नहीं। मंजूर नही। अजीब बेबसी मे, और गुस्से में, और बौखलाहट में, और रोष में मैं सलाखों से सिर पटक रही हूं, सलाखों को मुक्के मार रही हूं।

अजीव बात है, बाहर की भीड़ में किसी भी मनुष्य का चेहरा ठोस नहीं। चेहरे जैसे पारदर्शी पानी के बने हों, या ज़्यादा से ज़्यादा पानी में घुले हुए ी सफेद बादलों जैसी रुई के। पिलपिले, पतले, किसी-किसी समय पारदर्शी जाते हैं, किसी समय पतले पानी की तरह फैलकर बिखर जाते हैं, किसी मय पानी की सतह पर तैरते तेल की तरह अजीव शक्लों में फैलते और सुक-ते हैं। ठोस चेहरा सिर्फ एक है—मेरा। पर वे सब चेहरे मेरे पर या तो हंस हे हैं—अपने पतले पानी जैसे, फलूदे सरीखे दांतों से और या बिलकुल बे-नियाज़ लापरवाह मेरी चीखों से बेखबर आगे गुज़रते जा रहे हैं। पर मुझे लगता है, वे सिर्फ हिल रहे हैं, चल नहीं रहे—जिस तरह किसी कम गहरी झील के नीचे से वीडस नज़र आती हैं, हिलती-सी लगती हैं, पर चलती नहीं, वहीं अपने पैरों को झील के कीचड़ और काई में धीरे से टिकाकर पानी के हिलने के साथ-साथ हिलती रहती हैं, और ऊपर सतह पर से यही लगता है कि जैसे चल रही हों। तभी भीड़ में से आवाज़ें आती हैं, 'यह पागल है। खतरनाक है। इसे मार दो। पत्थर मार-मारकर मार दो! मार दो! मार दो!'

मैं चीखती हूं अजीब दशहत में। और अपनी ही चीखों से नींद खुल जाती है। देखती हूं तकिया भी और मेरा चेहरा भी आंसुओं से गीला है।"

"कैण्डी, मेरी छोटी बेटी, के मरने के बरस-भर बाद एक रात देखा, s प्रेगनैण्ट है। शायद पूरे दिनों से है। उसके पेट की गोलाई पर नीले रं ी साड़ी की कन्नी बहुत खूबसूरत लग रही है। मुझे उसके पेट की ओर देख कर डर लगता है। छोटी-सी, कली सरीखी लड़की, और ज़मीन-आसमान कंपा देने वाली प्रसूति की पीड़ाओं को कैसे झेलेगी? मैं डर से सहमी हुई पर कैण्डी हंसे जा रही है। पहाड़ी नदियों सरीखी अपनी हमेशा वाली हं बेसाख्ता, बहुत ही सच्ची, बड़ी ईमानदार और साबुत हंसी। निश्छल हंसी

'कैण्डी, तुझे डर नहीं लगता?'

'काहे का डर?' वह हंसे जा रही है—छन-छन। उसकी हंसी जै बचपने का मज़ाक उड़ा रही है। बावरी मां के बावरे सवाल का।

मैं थोड़ी-सी नाराज़ हो जाती हूं। कमाल है, मेरी चिन्ता से जान रही है, और यह मज़ाक कर रही है।

'अंमु !' वह मुझे मनाने के लिए इल्तिजा-भरी बहुत ही कोमल आवाज़ में लाड करती है।

'नहीं, मुझे नहीं पता, बस। तू जब हस्पताल जाएगी, मुझे न बुलाना। मुझसे तेरी पीड़ा न सही जाएगी।'

वह फिर हंसती है। आकाश में एक जो कुदरत की और कादर की हंसी धीमे-धीमे गूंजती है, ऐसी ही हंसी।

'अच्छा, नहीं बुलाऊंगी।' वह जैसे मुझसे समझौता करना चाहती है।

'पर तू अकेली इतनी पीड़ा कैसे सहेगी ?' और मेरी रुलाई निकल गई।

'फिर क्या हुआ ? तुम्हें पता है, यह मेरी कितनी सुन्दर बेटी है।' वह अपने पेट को लाड़ से सहलाती है। पर मैं रोए जा रही हूं। और रोने की आवाज़ से जाग जाती हूं।"

"मेरी पीठ की ओर कमर में दोनों तरफ तेज पीड़ा की कसक उठ रही है। और छाती में भी तीखा दर्द टीस रहा है—दोनों ओर।

मेरे गिर्द सफेद कपड़ों वाले कुछ लोग हैं। शायद डॉक्टर हैं। कहते हैं, 'ऑपरेशन से पहले ये गोलियां खा ले। बेहोश हो जाएगी तो ऑपरेशन की पीड़ा नहीं मालूम होगी।'

पर यह सब कुछ वह बोलकर नहीं कहते। इशारों से कहते हैं। शायद इसलिए नहीं बोल रहे, क्योंकि उनके मुंह के आगे भी सफेद कपड़े हैं। और हाथों में सफेद दस्ताने।

सफेद दस्तानों वाला एक हाथ मुझे पानी का गिलास देता है, और दूसरा हाथ सफेद गोलियां। मैं गोलियां खाए जा रही हूं। एक के बाद एक; पानी के घूंटों के साथ। पर बेहोश ही नहीं हो रही। पहले एक-एक गोली खा रही थी, फिर फंका मारने लगी। पर बेहोश ही नहीं हो रही। पेट पानी से भरकर फटने को हो रहा है। एक भी और गोली अन्दर नहीं जा रही। पर मैं बिलकुल होश में हूं।

वे सफेद कपड़ों वाले लोग मुझसे बहुत नाराज़ हो रहे हैं। 'या तो गोलियां खाए जा···या बेहोश हो, हम अपना काम खत्म करें।'

और मुझे, जिसे हमेशा अपने से ज्यादा दूसरों के आराम का ख्याल रहता

...सबको दुःखी कर
शर्म आती है, कोफ्त भी होती है कि मैं क्यों इन सबको दुःखी कर
वेहोश क्यों नहीं हो रही ताकि ये अपना काम खत्म करके फुर्सत पा

...फेद कपड़े वाले लोग झुंझला रहे हैं। नाराज़ हो रहे हैं। आखिर मैं
... कहती हूं, 'तुम नाराज न होओ, गोलियां मेरे अन्दर नहीं जा रही
मैं अन्दर निगलती हूं, वे बाहर आती हैं। तुम इसी तरह मेरा ऑपरेशन
...लो।' और वे चाकू-छुरियों से मेरी छाती और पसलियों में से मांस काटने
...ते हैं। मांस के कटने की किरच-किरच की आवाज़ मैं सुनती हूं। दर्द की
...लख लहरों से जूझ रही हूं। आखिर एक चीख मेरे सारे ज़ब्त के बांध को
...ोड़कर वल खाती वाहर आ जाती है। ज़ोर से चीखती हुई मैं जाग जाती
हूं।"

("कहीं बड़े ज़रूरी सफर पर जा रही हूं। पता नहीं कहां पर! जहां भी
जाना है, वह वहुत ही ज़रूरी और ज़िन्दगी-मौत के सवाल जैसी खास जगह है।
जाने के लिए तैयार हो रही हूं। पर कोई भी चप्पल पूरी नहीं आती। सब
चप्पलें या तो वहुत ही छोटी हैं, सोचती हूं दो कदम चलने पर ही छाले पड़
जाएंगे, या वहुत बड़ी हैं—पहनकर दो कदम भी चलना मुश्किल है। घसीट-
घसीटकर दो पैर चलती भी हूं, तो लगता है गिर पड़ूंगी।

वस, एक जूती उतारती हूं, एक पहनती हूं। कई जूतियां बिखरी पड़ी हैं।
इधर-उधर कमरे में—चप्पलें, सैण्डिल, गुरगाबियां, स्लीपर, पिशौरी जूतियां।
पर कोई भी मेरे पैर में पूरी नहीं आती। और वक्त गुज़रता जाता है। पत...
नहीं गाड़ी पर या काहे में जाना है। पर जिसपर भी जाना है, उसका व...
बीतता जा रहा है। और घवरहाहट और बौखलाहट से मेरा गला सूखा...
रहा है, और हाथों की हथेलियों में पसीना आ रहा है। हड़वड़ाकर जागत...
और दो गिलास पानी के भरकर पीती हूं।")

"लगता है, जिस जहाज़ में सफर कर रही थी, वह डूव गया है।
की वाकी बची हुई लकड़ियां और शहतीरें पानी की लहरों पर तैर रही
दूर।

...ते चार वरस

असीम पानी के शोर में घबराकर अकड़े हुए हाथ-पैरों को हिला-हिलाकर पानी की सतह पर रहने की कोशिश कर रही हूं। लहरें बहुत तेज़ हैं। हो सकता है, तूफ़ानी हों। पता नहीं। पर दूर-दूर तक कहीं ज़मीन नहीं दिखाई देती। समुद्र है, और समुद्र में तूफ़ानी लहरों का शोर है। और लगता है, बस, अभी डूब जाऊंगी। छोटी-छोटी किश्तियों में कुछ लोग बैठे हैं। शायद ये लाइफ बोट्स होंगी। बहुत ज़ोर लगाकर, रही-सही हिम्मत को बटोरकर जिस भी किश्ती पर हाथ डालती हूं, वे लोग मेरी उंगलियां काट देते हैं, जिन उंगलियों से मैंने उनकी किश्ती के किनारे को पकड़ा हुआ था।

शायद उनकी किश्तियों में मेरे लिए जगह नहीं। शायद वे सोच रहे हों कि मेरे बोझ से उनकी छोटी-सी किश्ती उलट जाएगी। पर अजीब बात है, एक किश्ती के लोग जब मेरी उंगलियां काट देते हैं, तो मैं बेसहारा पानी में पीछे गिर पड़ती हूं, फिर तैरती हुई, तैरती हुई भी नहीं, डूबती-सी सतह पर उभरती, हिचकोले खाती, दूसरी किश्ती के किनारे को जा पकड़ती हूं। फिर नई उंगलियां पता नहीं किस तरह उग आती हैं और फिर ये दूसरी किश्ती वाले लोग वे उंगलियां भी काट देते हैं। फिर तीसरी किश्ती वाले भी। फिर चौथी किश्ती वाले भी।"

"सपने से पहले।

करनाल। एक घर की बरसाती। दो चारपाइयां। मैं और मेरा पति। नीचे के हिस्से में, यानी असली घर में मेरी सास, ससुर, देवर, ननद और एक विधवा बुआजी, यानी कि मेरे पति की बुआ थीं।

रात अभी शुरू ही हुई थी। नींद का भी पहला ही दौर शुरू हो रहा था, कि लगा नीचे किसीने दरवाज़ा थपथपाया है। मैं तो चिड़िया के पंख हिलने पर भी जाग जाती हूं। सो उठकर अपने पति को जगाया। (तब मुझे उनसे खौफ आना शुरू नहीं हुआ था, मैं उन्हें 'राजजी' कहती थी) 'राजजी, कोई नीचे का दरवाज़ा खटखटा रहा है।' दरवाज़े के बाहर मोटी लोहे की जंजीरी कुण्डी थी, उसे पकड़कर कोई दरवाज़े में बजा रहा था। राजजी नीचे गए। कुछ थोड़ी-सी बातचीत हुई, फिर रसोई का दरवाज़ा खुलने की आवाज़ आई, फिर बाहरला दरवाज़ा अंदर से बन्द होने की। और फिर वह ऊपर आ गए। आखीर

की सीढ़ी पर खड़े होकर कहा, 'जरा नीचे आना', और फिर वापस सीढ़ियां उतर गए। मैं नीचे आई। वह रसोई में थे। एक टोकरी में कोई पन्द्रह-बीस मच्छियां पड़ी थीं। कहने लगे, 'इन्हें थाली में डालकर नमक लगा दो।'

मैं घबराकर टोकरी की ओर देख रही थी। मेरे मायके में बरस में एक-आध बार, वह भी मेहमानों के लिए, गोश्त रांधा जाता था। मैं बीजी से अपने वास्ते एक आलू उसमें डलवाती थी। बस एक आलू और गोश्त का थोड़ा-सा शोरबा! इसके अलावा न कभी हमारे घर कोई नानवेजिटेरियन आता था, और न पकता था। क्योंकि मेरी मां नहीं खाती थीं, इस कारण मेरे पिताजी ने भी खाना बन्द कर दिया था। और इस तरह की मच्छियां मैंने सिर्फ पानी में तैरती देखी थीं, इस तरह खामोश, मौत के सन्नाटे में चुपचाप लेटी हुई कभी नहीं देखी थीं। मुझे लगा, उनकी सुर्ख काली आंखें खुली थीं। आंखें खोलकर किस तरह मर गईं, मेरे कलेजे में कचोट-सी हुई। उनके चांदी रंग के बदन टोकरी में चमक रहे थे। और मैं थरथर कांप रही थी। मेरे पति ने मेरी ओर देखा, 'जल्दी कर ना भई!' उन्होंने थोड़ी बेसबरी से कहा। 'मुझे नहीं आता।' मैंने सहमकर कहा। 'कमाल है, तूने कभी मच्छी को नमक नहीं लगाया?'

'नहीं', मेरा सिर ज़्यादा हिला, जबान कम। 'चल थाल पकड़', और वह खुद छुरी ढूंढ़ने लगे। टोकरी के पास पैरों के भार बैठकर उन्होंने एक मछली उठाई और उसके पेट को लम्बाई की ओर से चीरा—जिस तरह करेले को चीरते हैं।

मेरी पीठ की तरफ, एक कंपकंपी बिजली की तरह सारी रीढ़ की हड्डी में से और उसके आसपास के सारे मसल्ज़ को काटती हुई गुजरी। घण्टे-भर पहले की खाई हुई रोटी पेट में कुलबुलाई। दिल की धड़कन या तो रुक गई थी और या ढोल-नगाड़े की तरह बज रही थी—कुछ याद नहीं। सिर्फ यह याद है कि कुछ जबरदस्त गड़बड़ थी। (आज भी वह दृश्य याद करके उसी तरह की गड़बड़ होती है।)

'नमक ला!'

मैंने लकड़ी की बड़ी नमकदानी उठाकर उनके पास रख दी, कांपते हाथों से।

'मैं काटे जाता हूं, तू इसमें नमक भरे जा!' मैं अभी भी सहमी-सी खड़ी थी।

तभी उन्होंने छुरी की नोक से एक सुर्ख लाल मास का टुकडा मच्छी के अन्दर से निकालकर ऊपर किया। बच्चों सरीखी एक्साइटमेण्ट से कहने लगे, 'देख-देख! इसका दिल अभी भी धड़क रहा है!'

और मैंने देखा, वह छोटा-सा मास का टुकडा धक्-धक् धड़क रहा था, और किसी धागे जैसों के साथ अब भी मछली के जिस्म से जुड़ा हुआ था। मैं गुसलखाने की तरफ दौड़ी। पर रास्ते में ही अंधेरे की बाढ़ ने मुझे डुबो दिया।

उस रात सपना आया कि 'मैं बेबस लेटी हुई हूं। होश में हूं, सब कुछ देख रही हूं, पर हाथ हिलाना चाहूं, हाथ हिला नहीं सकती, लात हिलाना चाहूं, लात हिला नहीं सकती। लगता है, टांगों और बाहों के साथ भारी चट्टानें बांधी गई हों। और या फिर टांगें, बाहें ही जमकर पत्थर हो गई थीं। सारा जिस्म एक चट्टान बन गया था, पर चट्टान को पता था कि वह असल में एक मासूम जिस्म है।

मेरे पति एक बड़ी-सी छुरी लेकर खड़े हुए थे। उनका चेहरा ऐसा था जैसे वह मुझे काटना चाहते तो न हों, पर और कोई चारा भी न हो; मानो यह बहुत जरूरी हो, वह छुरी को एक कपड़े से पोंछ रहे थे।

मैं चीखकर कहना चाहती थी, 'नहीं, मुझे न काटो!' पर लफ्ज़ सिर्फ छाती के अन्दर शोर मचाते थे, गले के इस तरफ नहीं आते थे।

मैं उठना चाहती थी, उठ नहीं सकती थी। हिलना चाहती थी, हिल नहीं सकती थी। एक छोटी-सी जुम्बिश भी नहीं। पूरा जोर लगा रही थी, सारी शक्ति बटोरकर, पर एक उंगली भी नहीं हिल रही थी।

सो मेरे पति ने छुरी की नोक मेरे गले के बीचोबीच—दोनों हंसली की हड्डियों के दरम्यान, जहां मुझे पता था कि धुगी की तरह कुछ धक्-धक् धड़क रहा होगा—घोंपी और फिर गले से नीचे की ओर चीरते चले गए। खून नहीं बहा। सिर्फ मांस की किरच-किरच की आवाज़ आई।

और फिर एक लाल मांस के लोथड़े को उन्होंने छुरी की नोक पर ऊपर खींचा, 'कमाल है, इसका दिल तो अभी भी धड़कता है।' वह मास का लोथड़ा धक्-धक् करता मैंने स्वयं देखा। सुर्ख मोटे धागों के साथ वह मेरी छाती के अन्दर वहीं जुड़ा हुआ था। वे धागे भी मैंने देखे, मोटी, लिजलिजी, सुर्ख रस्सियों

जैसे। मैं उन्हें कुछ कहना चाहती थी, पर बोल नहीं सकती थी। चीखना चाहती थी, पर चीख गले में ही जम गई थी। और इस अजीब बदहवास अकुलाहट में मेरी नींद खुल गई। मेरे पति ने कहा, मैं चीखी थी। साथ ही पूछा, 'क्यों?'

मैंने कहा, 'कुछ नहीं!' "

"एक सपना जो बार-बार आता···रेत तपती हुई। जहां तक नज़र जाती है वहां तक फैली हुई। सीधी-सपाट नहीं, ऊंची-नीची। और मन में यह अहसास, कि आसमान के किनारे तक ही नहीं, यह रेत उससे भी आगे तक फैली हुई है।

सिर पर तपता सूरज, सफेद नहीं, सुर्ख-सा। रेत के तपते कण ज़मीन से लेकर सूरज तक एक सुर्ख गुब्बार में लटके हुए। और प्यास से छटपटाती हुई मैं। रेत पर कभी दौड़ती, कभी तेज़ चलती, कभी सिर लटकाकर पैर घसीटती। यह पता नहीं रेत के कण हैं जो सूरज की तरफ परवाज़ कर रहे हैं या सूरज के टुकड़े हैं जो धीरे-धीरे तैरते हुए मुझ तक आ रहे हैं—मैं आंखें खोलकर सामने ऊपर देखती हूं तो गोल-गोल लाल रंग के, पीले और ज़र्द, काशनी, नीले और आग जैसे रंग के नारंगी गोले, छोटे-बड़े सब आकारों के गोले, मेरी आंखों के सामने शून्य में तैर रहे हैं। आहिस्ता-आहिस्ता। कभी लगता है ठोस हैं, कभी लगता है महज़ हवा सरीखी किसी चीज़ के बने हुए हैं। पर उनके रंग से, और उनके आहिस्ता-आहिस्ता शून्य में तैरने से दहशत होती है।

प्यास से जैसे ज़िबह हो रही हूं। गले में, जीभ पर, और होंठों पर बहुत-से कैक्टस उग रहे हैं। अजीब बेबसी, अकुलाहट, पागल कर देने वाली प्यास। आहिस्ता-आहिस्ता ज़िबह होने का अहसास। पर न खून गिरता है, न चीख निकलती है। सिर्फ बहुत-सी चीखें खामोश छाती के अन्दर फड़फड़ाती हैं—बड़े-बड़े पंखों वाले घायल परिन्दों की तरह।

एक जगह पर घुटनों के बल बैठ जाती हूं, प्यास से बौखलाई हुई, और नाखूनों से, उंगलियों से रेत को खोदने लगती हूं, मिट्टी की तरह। पता नहीं क्यों, मुझे बहुत ज़ोर लगाना पड़ रहा है। रेत, रेत की तरह परे नहीं हटती, मिट्टी की तरह ज़िद करती है, ज़ोर से खुद रही है।

मैं जल्दी-जल्दी, जैसे जिन्दगी-मौत का फैसला इसी बात पर निर्भर हो, और जैसे कोई बस आखिरी साम किसी काम के लेखे लगावे—बेहद बेसबरी और हड़बड़ाहट से रेत खोद रही हू । रेत खोदती हुई मैं अपने-आपको देख सकती हूं। एक जबरदस्ती से चुप कराई हुई चीख से जरा-सा टेढ़ा हुआ चेहरा। रोके आसुओं और बेबसी से अधमुंदी आखें, बालों मे रेत, झुकी हुई कमर, हाथों से लगते जोर के कारण कन्धे भी हिलते हुए, मैले कपड़े । अजीब बदसूरत शक्ल ।

गड्ढा काफी गहरा हो जाता है तो नीचे से गीली रेत निकलती है। मेरा दिल जैसे उछलकर गले मे आकर खड़ा हो जाता है…'पानी !' गीली रेत सख्त बेसबरी मे परे करती हू । नीचे से पानी रिसकर ऊपर को आता है । मैं अपनी अंजुली उस पानी के ऊपर रख देती हू। पानी—जिसमे रेत के कण भी घुले हुए हैं—मेरी उगलियों की विरलों में ऊपर आ रहा है—मेरी अंजुली मे। मेरी प्यास पागल होकर शोर मचाती है—पानी-पानी ! अंजुली मे पानी आहिस्ता-आहिस्ता भर रहा है, अंजुली के नीचे की ओर से । तभी मेरी हथेली के उलटी तरफ, जो पानी और गीली रेत की तरफ है, कोई गीली-सी चीज घसरती है। घबराकर मैं अंजुली ऊपर करती हूं। गीली रेत और बित्ता-भर रेत घुले पानी के चह-बच्चे के नीचे से एक मिट्टी रंगा, चिपचिपा-सा चमकता हुआ सिर और दो आधी सोई-सी आखें बल खाती हुई रेंगती हुई बाहर आ रही हैं। मेरे कलेजे में जैसे डर का एक तेज कांटा है, 'साप ?' वह बल खाती हुई चीज धीरे-धीरे सरकती हुई बाहर की ओर घिसट रही है। नही, सांप नही। साप तो हसीन होता है। यह तो महज गंडोये जैसी कोई चीज है, डर से सिकुड़ती हुई, कुल-बुलाती, बल खाती, गीली गुंधी हुई मिट्टी के रंग की, चिपचिपी, लिजलिजी। मन मे घिन आती है। प्यास से भी बड़ी । और मितलाहट, और नफरत । पानी मैं अंजुली से गिरा देती हूं। लिजलिजे गंडोये के जिस्म से छुआ हुआ पानी मैं पी नहीं सकती।

और मैं फिर आगे चल पड़ती हूं। फिर वही डगर, वही सफर, वही प्यास, वही थकावट।

लगता है जैसे सूरज की तपिश की भी आवाज़ है—हुंकारे जैसी।

फिर उसी तरह रेत खोदती । पागल बेकली में । प्यास मे छाती के अन्दर

की ओर भी कैक्टस का जंगल। छाती के अन्दर जैसे कोई दोनों हाथों से सांस को पकड़कर अन्दर को खींचता है—रस्सी की तरह। गीले रेत पानी की चुल्ली-सी, रेत में घुली हुई। मेरी अंजुली के नीचे फिर वही गीली-सी सरसराहट। एक और गंडोया, बित्ता-भर पानी में से निकलता हुआ...।"

"एक और सपना। सपना जो बहुत बार आता है...एक अजीब दरिया है। न पता लगता है कि कहां से आ रहा है, न पता लगता है किधर जा रहा है; क्योंकि चारों तरफ सीधे ऊपर की ओर उठे हुए पहाड़ हैं—दीवारों की तरह; काली, सख्त, पथरीली दीवारों की तरह। यह पानी कोई झील भी हो सकता था पर नहीं; क्योंकि बहुत वेग वाली रवानी है इसमें। थोड़ा-थोड़ा लहरों का शोर है। और लहरें ऊपर जाती झाग फेंकती नजर आती हैं, जैसे पहाड़ी दरियाओं में नजर आती हैं।

उन लहरों के ऊपर किसी गोल चौड़े थाल जैसी गोल लकड़ी पर मैं बैठी हूं। उस लकड़ी पर मेरा कोई कण्ट्रोल नहीं। यह कभी सीधी चलती है, कभी लहरों में ऊपर-नीचे जाती हुई। मैं चाहती हूं वह पहाड़ों के पैरों से न टकराए, फिर चाहे टूट ही जाए। पहाड़ खौफनाक हैं, सीधे ऊपर की ओर जाते हुए। पर मैं सोचती हूं, और यह सोच सपने में बहुत साफ नजर आती है, कि इस पानी में ड्रिफट करने से तो पहाड़ों की खूबसूरती के साथ सर पटककर मर जाना भी बेहतर है, क्योंकि वह कम अज कम ठोस तो होंगे ही। पैरों के नीचे इस ठोस अहसास को महसूस करने के लिए मैं सहक रही हूं। लगता है, कोई किनारा मेरी मंज़िल नहीं (शायद इस करके कि किनारा कोई नजर ही नहीं आता) सिर्फ हाथों से उन पत्थरों का ठोस और सख्त स्पर्श महसूस करना और पैरों के नीचे उनके खुरदरेपन को जरना; बस, यही मेरी मंज़िल है, मेरी सबसे बड़ी ख्वाहिश।

पर वह गोल थाल जैसी चीज़ बस या तो लहरों पर हिचकोले खाए जा रही है और या गोल-गोल घूमे जा रही है। और मेरे हाथों की हथेलियां और पैरों के तलुवे, बस, उन पत्थरों के लिए तड़प रहे हैं।"

"एक और बहुत बार आने वाला सपना—एक सड़क पर चल रही हूं। पता नहीं कब से। पर लगता है बहुत साल चल चुकी हूं। मीलों के मील। क्योंकि टांगों मे गाठें पड़ी हुई हैं और पैरों के नीचे गहरे सख्त, जैसे पैरों के तलुवों में कील ठुके हुए हों।

सड़क पर एक मरा हुआ परिन्दा पड़ा हुआ है—बड़े-बड़े पंख चौपट खुले हुए, चोंच जरा-सी खुली, आंखें बेजान-सफेद, और खून की एक छोटी-सी तलैया पेट के पास। बस कडछी-भर खून। सडक के बीच मे परिन्दे की लाश पड़ी है। मैं परे से फेर खाकर निकल जाती हू। पास से बचकर निकलने से मन बहुत दुखता है। पर मुझे तो चलना है। सो चले जाती हूं। थोडा आगे जाती हूं तो सड़क पर बहुत-सी टूटी हुई जूतियां पडी हैं। बेतरतीब बिखरी हुई। 'ये किसकी जूतिया हैं?' मैं हैरान होकर सोचती हू। बडी जानी-पहचानी जूतियां लगती हैं। पहले बहुत बार देखी हुई। तभी मैं अपने पैरो की ओर देखती हूं। खूब गर्द से भरे हुए। 'ओहो, ये तो मेरी ही जूतियां है।' पर इतनी सारी वहां से आ गई? पहनी हुई तो मैंने एक ही जूती थी। कुछ समझ मे नही आता। सिर्फ पैर नंगे हैं, गर्द से भरे हुए, मैले, और पैरों के तलुओ मे कील ठुके हुए, जिनमें से आहिस्ता-आहिस्ता खून रिसता है। नही, अपने पैरों पर तरस नही खाना, मैं सख्ती से सोचती हूं और उठकर चल पडती हू, टूटी-बिखरी जूतियो से बचकर। और फिर आगे मुझे सड़क पर फटे हुए कपडे मिलते हैं। दूर से यही लगता है जैसे बहुत-से लोग सोए पडे हों, पर पास जाकर देखती हू, कपड़े हैं। चारों तरफ बिखरे हुए। सफेद, पुराने, फटे हुए, धुले हुए। 'ये भला किसके कपडे हैं?' हैरान होकर सोचती हूं। तभी मैं अपने जिस्म की ओर ताकती हू। नगी हूं। सारा जिस्म नही सिर्फ धड़। मैं अपनी बांहों से छाती ढांपती हू—एकदम घबराकर आस-पास देखती हूं। कोई नही। सिर्फ सपाट और वीरान सडक है, कोई मनुष्य तो क्या जीव-जन्तु भी नही। थोड़ी तसल्ली होती है—शुकर है, मुझे इस हालत में किसीने नही देखा। 'पर मेरे कपड़े कहां गए?' फिर मैं सड़क पर पड़े फटे-बिखरे हुए कपड़ों को देखती हूं। वे पड़े हैं। जो कपडे मैं पहने हुए थी, वे फट-कर वहा परे सड़क पर चौफाल पडे है—बेसहारा। बड़े बेचारे-से लग रहे हैं। अपने से ज्यादा कपडों पर तरस आ रहा है। पर बाकी के इतने सारे कपड़े कहां से आ गए? फिर ध्यान से देखती हूं। बाकी सब कपडे भी मेरे ही थे जो

मैं सालों पहले पहना करती थी।

और उदास, नंगी, छाती के आगे बांहें लपेटे, तेज़ कदमों से, थकावट से निढाल, और वेहद उदास आहिस्ता-आहिस्ता फिर चल पड़ती हूं। सड़क पर विखरे कपड़ों वाला रास्ता छोड़कर। सिर्फ एक वात का फिकर है मुझे, 'कोई मुझे इस तरह चलते हुए न देख ले, कोई देख न ले…।' "

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

ये सपने हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और चिन्तक डॉक्टर लक्ष्मीनारायण लाल की १९७७ की डायरी में से हैं। उन्होंने इस किताब के लिए, अपनी समूची डायरी मेरे हाथ में थमा दी। ये सपने उसी डायरी में से चुनकर दे रही हूं :

"पटियाला में लेक्चर देने आया हूं। पत्नी के साथ सोया था, पर सपने में एक दूसरी स्त्री थी। वह स्त्री कौन थी, उसका नाम, पता क्या है, नहीं जानता। पहले उसने मेरे होंठों का चुंबन किया, फिर मैंने किए। फिर हम इन दोनों एक-दूसरे को देखकर मुस्करा पड़े।"

—२९ जनवरी, १९७७

"तमाम सुन्दर-सुन्दर साप, तरह-तरह के रंगों और शक्लों में—जैसे क्यारी में फूल खिले हों। हरे रंग के साप को मैं प्यार करता हूं। उसके सिर को सहलाता हूं। एक साप अचानक हंसने लगा। धीरे-धीरे और सांप भी हंसने लगे, जैसे बच्चों की एक टोली हंस पड़ी। मैं भी हंसने लगा।"

—२ मार्च, १९७७

"बंबई का समुद्र है—मैं अपने इसी शरीर, इसी रूप में उसपर उड़ रहा हूं। बड़े आनन्द से। कहीं कोई डर नहीं है। कहां उड़कर जाऊंगा; बस यह प्रश्न करते ही सपना टूट गया। पर नींद आते ही फिर वही सपना। इस बार

में सालों पहले पहना करती थी।

और उदास, नंगी, छाती के आगे बांहें लपेटे, तेज़ कदमों से, थकावट से निढाल, और बेहद उदास आहिस्ता-आहिस्ता फिर चल पड़ती हूं। सड़क पर बिखरे कपड़ों वाला रास्ता छोड़कर। सिर्फ एक बात का फिकर है मुझे, 'कोई मुझे इस तरह चलते हुए न देख ले, कोई देख न ले...।' "

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

ये सपने हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक और चिन्तक डॉक्टर लक्ष्मीनारायण लाल की १९७७ की डायरी में से हैं। उन्होंने इस किताब के लिए, अपनी समूची डायरी मेरे हाथ में थमा दी। ये सपने उसी डायरी में से चुनकर दे रही हूं :

"पटियाला में लेक्चर देने आया हूं। पत्नी के साथ सोया था, पर सपने में एक दूसरी स्त्री थी। वह स्त्री कौन थी, उसका नाम, पता क्या है, नहीं जानता। पहले उसने मेरे होठों का चुंबन किया, फिर मैंने किए। फिर हम इन दोनों एक-दूसरे को देखकर मुस्करा पड़े।"

—२९ जनवरी, १९७७

"तमाम सुन्दर-सुन्दर सांप, तरह-तरह के रंगों और शक्लों में—जैसे क्यारी में फूल खिले हों। हरे रंग के सांप को मैं प्यार करता हूं। उसके सिर को सहलाता हूं। एक साप अचानक हंसने लगा। धीरे-धीरे और साप भी हंसने लगे, जैसे बच्चों की एक टोली हंस पड़ी। मैं भी हंसने लगा।"

—२ मार्च, १९७७

"बंबई का समुद्र है—मैं अपने इसी शरीर, इसी रूप में उसपर उड़ रहा हूं। बड़े आनन्द से। कहीं कोई डर नहीं है। कहां उड़कर जाऊंगा; बस यह प्रश्न करते ही सपना टूट गया। पर नींद आते ही फिर वही सपना। इस बार

नंत समुद्र—मैं उसपर उड़ रहा हूं—उड़ रहा हूं।"

—२१ अप्रैल, १९७७

आज रात एक विचित्र सपना देखा। एक पेड़ पर चढ़ा कोई फूल तोड़ने। क्या हूं कि पेड़ पर एक बहुत ही खूबसूरत चिड़िया बैठी हुई है। उसने 'चलो मेरे साथ उड़ चलो।' मैं उसके साथ उड़ चला। मैं यह भी देख हूं कि मैं सपना देख रहा हूं; यह सच नहीं है। पर मैं सो रहा हूं—यह नहीं पता। चिड़िया के साथ मैं एक पहाड़ की चोटी पर जा बैठा। देखने गा कि पहाड़ की चोटी चींटियों से ढकती जा रही है और वहां हमारा बैठे हना असंभव होता जा रहा है।"

—२८ मई, १९७७

"रात का सपना भोजन बनाने से शुरू हुआ। पहले बर्तन मांजे और फिर सब्जियां काटीं। चूल्हा जलाया। भोजन बनाता रहा। तरह-तरह के भोजन। फिर मेहमान आए; मेरे कुछ अभिन्न मित्र—प्रमोद शुक्ल, शिवसागर मिश्र, अमृताजी, इमरोज़, शोभा बहन आए। खाते रहे हम सब साथ, बस खाते रहे सारी रात। फिर सपना खत्म। और गहरी नींद।"

—१९ जून, १९७७

"देखा—एक नन्ही-सी चिड़िया एक डाल से दूसरी डाल पर फुदक-फुदक-कर गा रही है। और मैं देख रहा हूं। थोड़ी देर बाद मैं ही पेड़ हो जाता हूं। फिर मैं ही जंगल हो जाता हूं और वह चिड़िया, वही एक चिड़िया पूरे जंगल में उड़-उड़कर, बैठ-बैठकर गा रही है। फिर अन्त में मैं ही वह चिड़िया भी हो जाता हूं।"

—२४ जून, १९

"मेरी स्वर्गीय मां से मेरी भेंट होती है। वह मुझसे बातें करती है। कितनी खुश है! मैं पूछता हूं, 'मां, तुम अब तक कहां थीं?' वह कह 'यह कैसा सवाल है रे?' मां कितनी सुन्दर लग रही थी, बिलकुल

अनिंद्य सुन्दरी ! 'मां, कोई गाना सुनाओ ।' मां शरमाकर भाग गई !"

—२६ जून, १९७७

"जलालपुर पहुंचा । गांव में मछली मारने का सपना देखा। मछलियां पेड़ों पर चढ़ गई हैं। हंसी-मजाक कर रही हैं। खेल कर रही हैं। मैं भी उनके साथ खेलने लगा। मछली मारना भूल गया।"

—१५ जुलाई, १९७७

"वहीं हूं जलालपुर में। दूसरी रात को स्वर्गीय भाभीजी का स्वप्न देखा। उन्हें बहुत कष्ट है वह कराह रही हैं और मैं रो रहा हूं। फिर देखता हूं, उन्हें भयंकर चेचक हो गई है। वह पानी-पानी चिल्ला रही हैं। मैं पानी भरने जाता हूं, पर पानी कुएं से निकालते-निकालते स्वयं कुएं में गिर पड़ता हूं।"

—१६ जुलाई, १९७७

"पिछली रात काफी देर से सोया, पर सोते ही एक सपने से लग गया। नदी के किनारे एक बहुत बड़ा मेला लगा हुआ है। लाखों लोगों की भीड़ है। उस मेले में मैं घूम रहा हूं। चीजें देख रहा हूं। फिर गाने लगता हूं। सारा मेला मेरे साथ गाने लगता है। मेले में अचानक आग लग जाती है। लोग गा रहे हैं। आग फैलती जा रही है। मैं अकेले आग बुझाने लगता हूं। और आग के बीच में फंस जाता हूं। मैं लोगों को आवाज देता हूं, पर कोई बचाने नहीं आता। तब मैं उसी आग पर चलने लगता हूं। आग पर चलते-चलते मैं कहीं दूर चला जाता हूं। वहां देखता क्या हूं कि एक राक्षस जैसा आदमी न जाने कब से सोया पड़ा है। उसपर घास उग आई है। मिट्टी चढ़ गई है। पर उसका मुंह खुला हुआ है। सांसें ले रहा है। मैं उसको जगाता हूं। फावड़े से खोदकर उसपर की मिट्टी हटाता हूं। वह उठता है। बहुत भूखा है। कहता है, 'खाना लाओ।' खाना लाता हूं। और मांगता है। फिर मुझे खाने को कहता है। कहता है, 'क्यों जगाया मुझे ? मैं इसीलिए तो सोया था।' मैं उसे समझाता हूं। नहीं मानता। लड़ाई होती है। मुझे घायल कर देता है। बेहोश हो जाता हूं। बेहोश

कर मैं फिर सपना देखने लगता हूं। सुबह हो जाती है।"

—११ अक्तूबर, १९७७

"परिचित-अपरिचित लोगों के बीच में एक बड़े घर के बड़े कमरे में मैं बैठा था। बातें करते-करते मैं कमरे में उड़ने लगा। चूंकि मुझे उसी कमरे में रहकर बातें भी करनी थीं, इसलिए दीवारों से पैर चिपकाकर ज़मीन के समानांतर हवा में उड़ता-झूलता हुआ बातें कर रहा था। कभी-कभी कमरे से बाहर उड़ जाता, कभी कमरे में आ जाता!"

—१० नवम्बर, १९७७

मन्नू भण्डारी

मन्नू भण्डारी आज एक चेतन कलाकार के तौर पर हिन्दी के प्रमुख कहानीकारों में हैं। चेतन दृष्टि से वह सिर्फ अपनी नही, अपने पात्रों की जिन्दगी के गहरे अधेरो मे भी झाक सकने की सामर्थ्य रखती हैं। मन्नू भण्डारी के सपने उन्हींकी कलम से इस प्रकार हैं :

"गहरी नीद मुझे नही आती, इसलिए आधी रात सपने देखने में तो आधी रात देखे हुए सपनों पर विचार करने में ही बीत जाती है। लेकिन सवेरा होते ही सपना और उसका सब दिन की रोशनी मे विला जाते हैं। शायद यही कारण है कि आज जब अपने देखे हुए दो सपने लिखकर भेजने की बात सामने आई तो समझ ही नही आ रहा कि क्या लिखू। हज़ारों देखे सपनों के बीच से दो का चुनाव···थोड़ा मुश्किल तो है, फिर भी लिख रही हूं। एक बहुत पुराना सपना है, जिसकी बहुत गहरी छाप मन पर छूटी थी और जिसकी कई-कई व्याख्याए मैंने की थी; और दूसरा अभी कुछ दिन पहले का देखा हुआ, जो देखने पर बड़ा ऊलजलूल लगा था, पर सोचने पर लगा कि इस ऊलजलूलपने का भी एक गहरा अर्थ है।

करीब बारह साल पहले यह सपना देखा था। मैं अपनी बडी बहन और सात साल की बच्ची के साथ बीहड़ जंगल मे से जा रही हूं। चारो ओर धूल ही धूल उड़ रही है और पानी का कहीं नामोनिशान नहीं। प्यास से मेरा गला बुरी तरह सूख रहा है और होंठ पपड़ा गए हैं। एक-एक कदम चलना मेरे लिए भारी हो गया है। पर मेरी बहन को कोई परेशानी नही हो रही। वह मुझे

ा बंधाती जा रही है, 'अरे चल मन्नू, कोई प्यास-व्यास नहीं। इस
सोच ही मत और बढ़ती चल। बस, अभी पहुंच जाएंगे।' तभी मुझे
ां दिखाई दे जाता है। मैं बच्ची का हाथ छोड़कर उसी ओर दौड़ पड़ती
बिना यह देखे कि उसमें पानी है या नहीं, छलांग लगा देती हूं। पर
जाते ही पानी तो नहीं मिलता, ढेर सारे सांप-बिच्छू, केकड़े बुरी तरह
कर मेरा शरीर नोचने लगते हैं। भयंकर यातना। मेरा सारा मांस नुच
और अब हड्डियां कुतरी जा रही हैं। असह्य पीड़ा। तभी मुझे अपनी बच्ची
रोती हुई आवाज़ सुनाई देती है···'ममीऽ···' और झांकता हुआ उसका
हरा दिखाई देता है। मैं अपनी बची-खुची सारी ताकत लगाकर ज़ोर से
ीखती हूं···'सुशीला, टिकू को यहां मत आने देना।' और इस चीख के साथ
ही मेरी नींद खुल जाती है। मैं केवल नींद में ही नहीं चीखी थी, बल्कि सचमुच
ही मेरी चीख निकल पड़ी थी। धौंकनी की तरह सांस चल रही थी और सारा
बदन पसीने में नहाया हुआ था। जाग जाने के बाद भी अजीब-सी दहशत ने
मुझे जकड़ रखा था और राजेन्द्र पूछ रहे थे कि आखिर क्या हो गया···क्या
देख लिया मैंने ?

बड़ा विचित्र था उस प्यास का एहसास और बेहद भयंकर थी वह यातना,
जो उस प्यास को बुझाने के प्रयत्न में मिली थी।

इससे अधिक इस बारे में कुछ नहीं लिखूंगी। इसकी तरह-तरह की जो
व्याख्याएं कीं, वे सब मेरे अपने पास, और सपना ज्यों का त्यों आपके सामने।"

"यह सपना अभी कुछ दिन पहले का ही है। कॉलेज में स्टाफ-कौंसिल की
मीटिंग हो रही है। दरी पर गोल बनाकर हम लोग बैठे हैं (सूचनार्थ यह बत
दूं कि हमारे यहां स्टाफ कौंसिल की मीटिंग कुर्सियों पर बैठकर होती है)
मेरे हाथ में एक तानपूरा है, जिसमें से कोई आवाज नहीं निकल रही, पर जि
मैं लगातार बजा रही हूं और सब मुझे देख रहे हैं। तभी मुझसे नाचने के ि
कहा जाता है। मैं बड़ी दुविधा में, क्योंकि नाच मुझे बिलकुल नहीं आता
कहती हूं कि मैं नाच नहीं सकती। इसपर मेरी एक कुलीग कहती है, 'ि
भण्डारी ! नाचना तो आपको पड़ेगा। चलिए नाचिए।' दूसरी कह
'लो मैं गाती हूं, तुम नाचो।' और वह बेसुरा-सा लोकगीत गाने लगती हैं।

···ने चार बरस

बेचारगी के भाव में खड़ी होकर नाचने लगती हूं···निहायत ही बेताला होकर। नाच खत्म होने पर मुझसे कहा जाता है कि मैं दुबारा नाचूं। गाने की पंक्तियां मेरे दिमाग में से निकल गई हैं और बहुत ज़ोर लगाने पर भी याद नहीं आती। मैं उनसे कहती हूं कि मैं गाना एकदम भूल गई, आप दुबारा गाइए। इसपर हमारी प्रिंसिपल मुझसे तो कुछ नहीं कहती, पर एकदम उठकर अपना शाल संभालती हुई बाहर चली जाती हैं। एक सीनियर कुलीग कुछ आरोप-भरे स्वर में कहती हैं, 'मिसेज़ भण्डारी! लगता है आजकल आपका कॉलेज से कोई इनवॉल्वमेण्ट नहीं रह गया। अभी गाना गया और आप अभी भूल गईं। देखिए, मिसेज़ सिंह आपके घर के पास रहती है, इतने साल आपको यहां रहते हो गए, आप कभी उनके घर भी नहीं गईं। अब आपको नाचने के लिए कहा तो यह भी आपको बोझ लग रहा है।'

मैं एकदम गुस्से से भभक उठी, 'कमाल है, मैं किसके घर जाऊं, किसके घर नहीं जाऊं, यह भी आप लोग तय करेंगे···' और इतना कहने के साथ ही मेरी आंख खुल गई। पहले तो बड़ी देर तक हंसी आती रही। ऐसा तो न हमारे कॉलेज में होता है न मेरे साथ कुछ हुआ, पर बाद में लगा कि सपना बड़ा सटीक है। सचमुच पढ़ाना आजकल बिना स्वर निकाले निरन्तर तानपूरा बजाते रहने जैसा ही यान्त्रिक और नीरस हो गया है! कॉलेज में होने वाली मीटिंग्स और उनकी लम्बी-लम्बी बहसें बेसुरे गाने और बेताल नाच जैसी एब्सर्ड नहीं हो उठी हैं? या कि अनकहे, अनजाने और अनचाहे ही नौकरी ने ज़िन्दगी के पूरे पैटर्न को अपनी गिरफ्त में नहीं ले लिया है? लगा, जैसे नौकरी को लेकर रात-दिन चेतना के किसी न किसी स्तर पर उठने वाली बेचैनी और विरक्ति ही इस सपने में प्रतिबिम्बित हुई है।

पर यह तो मेरी व्याख्या है। आप चाहें तो बिल्कुल अलग ढंग से अलग तरह के अर्थ भी इसमें से निकाल सकते हैं।"

राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादव हिन्दी के एक नामवर कहानीकार हैं। मैंने उनसे एक ही
में दो चीज़ों की मांग की थी—एक, उनके सपनों की; दूसरे, उनकी स्वयं
ी हुई मुलाकात की, जिसकी मुझे एक पृथक् संग्रह 'मैं और मैं' के लिए
वश्यकता थी। उनका एक ताज़ा सपना इन्हीं दो मांगों के फलस्वरूप आया
आ सपना है, जो अपने-आपमें किसी जाग्रत् अवस्था के विचारों के नींद के पह
दाखिल हो जाने के पहलू से एक अध्ययन है। इसके और इनके एक और ब
प्रतीकात्मक सपने का ज़िक्र उनकी ज़बानी इस तरह है :

"प्रिय अमृता जी,

मेरी याददाश्त बहुत कमज़ोर है। पढ़ी, देखी-सुनी—सभी कुछ भूल जाता हूं। कभी-कभी तो यह भी याद करना मुश्किल होता है कि कोई बात सचमुच मेरे साथ हुई थी या सिर्फ सोची थी। दार्शनिक लोग तो इसे बहुत ऊंची स्थिति कहते हैं कि ज़िन्दगी मात्र एक सपना है, और 'वहां' या 'यहां' बैठकर तय करना मुश्किल है कि सच क्या था···कहां था? बहरहाल, सपना तो मुझे कभी भी याद नहीं रहता। उस समय ज़रूर सोचता रहता हूं कि इसे याद रखना है, या यह तो इतना महत्त्वपूर्ण है कि ज़रूर याद रहेगा। दो-एक दिन रहता भी है, मगर फिर गायब···हां, इतना अपनी तरफ से कह सकता हूं कि 'कुबलाइखां' या कहानियां-उपन्यास लिखने का मुझे कभी सपना आया हो, याद नहीं पड़ता। मेरे सपने अक्सर शालीन भी नहीं होते।

वैसे अभी-अभी आपके दबाव में आकर मैंने एक शुद्ध साहित्यिक सप

देख डाला है : एक बड़ी-सी गोल मेज है, उसपर घड़ेनुमा चिमनी वाला लैम्प रखा है। नीची-सी बेंत की कुर्सी पर मैं बैठा हूं और चिकने आर्ट पेपर पर छपी एक बड़ी-सी पत्रिका खुली रखी है। बाकी कई लोग झुके हुए एक पत्रिका को देख रहे हैं। जैसे पास ही के प्रेस से छपकर अभी-अभी आई हो। हो सकता है, डाक से पहुंची हो। हम सब लोग जिस लेख को बड़ी उत्सुकता से देख रहे हैं, वह दोनों खुले हुए पन्नों पर फैला है और ऊपर मोटे-मोटे अक्षरों में छपा है 'मैं और 'मैं''। इसमें दूसरा 'मैं' इकहरे उद्धरण-चिह्नों में है। लेखक का नाम है 'मैक्सिम गोर्की'। यह पत्रिका निश्चय ही 'सोवियत भूमि' है, लेकिन पन्नों का सारा 'ले आउट' 'स्पैन' का है। मैं यह देखकर आश्चर्य और खुशी से भर जाता हूं कि जो व्यक्ति एकदम झुका हुआ उंगली से मुझे एक-एक कालम दिखा रहा है वह खुद गोर्की है'''पच्चीस-तीस वर्ष की उम्र वाला, जैसा मैंने तस्वीरों में देखा है''' बड़े-बड़े बालों के पट्टे, चिकनी सफाचट दाढ़ी, दुबला शरीर'''मैं इस बात से बेहद प्रसन्न हूं कि अब मेरा काम कितना आसान हो गया है। अब मैं आपको 'मैं और मैं' लिखकर दे सकता हूं।

मैं जानता हूं, यह सपना मुझे क्यों दिखाई दिया। आपका आग्रह। अब यह गोर्की और कोई नहीं है, पंकज सिंह है जिससे एकाध दिन पहले व्यक्तिगत बातें करते हुए मुझे हलका-सा ध्यान आया था कि इसकी शक्ल-सूरत युवा गोर्की से बहुत मिलती है। पत्रिका शायद योगेश गुप्त वाली है जिसे निकालने के मसूबे हम लोग अक्सर बांधते रहते हैं। माहौल वही उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त या बीसवीं के प्रारम्भ का है, जब साहित्य या राजनीति इसी तरह का सामूहिक सरोकार होता था और एक-एक चीज पर सब मिलकर प्रतिक्रियाएं करते थे। मगर गोर्की ही क्यों ? इधर तो बरसों से मैंने उसकी कोई चीज भी नहीं पढ़ी। आप जानती ही हैं, जैसे दूसरे महायुद्ध के आसपास उर्दू में समरसेट मॉम हुआ करते थे, हिन्दी में हमेशा से गोर्की होते आए हैं। प्रेमचन्द अपनी मूछों के कारण गोर्की हैं तो जैनेन्द्र इसलिए कि प्रेमचन्द ने उन्हें गोर्की बताया था। शिवदान-सिंह चौहान ने भी कभी अश्क और रेणु (या रांगेय राघव) को गोर्की होने के खिताब दिए थे। स्वतंत्रता के बाद मजदूर-वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण शिवनारायण श्रीवास्तव नाम के गोर्की हुए और इधर नवीनतम कमलेश्वर को गोर्की का चोला प्राप्त हुआ'''मगर यह पंकज तो कवि है'''हो सकता है

वेकारी के कारण उसकी आवारागर्दी, तथाकथित क्रान्तिकारिता और हुलिया, सबने मेरे सपने में यह घपला पैदा कर दिया हो···

इसका मतलव कतई यह नहीं है कि मैं 'अज्ञेय' जी और विनोवा की तरह सिर्फ आध्यात्मिक और सांस्कृतिक सपने देखता हूं। अजी, राम का नाम लीजिए···मुझे तो ऐसे ऊल-जलूल, अश्लील और आपत्तिजनक सपने आते हैं कि फ्रायड के ज़माने में होता तो सत्यानाश हो जाता। हां, उनके ऐसे साफ अर्थ मैं नहीं जानता। वाद में उनपर सोचता भी हूं। तीन-चार साल पहले मैंने लगातार दो दिन एक सपना देखा था और याद इसीलिए है कि उसे मैंने अपनी कहानी 'वहां तक पहुंचने की दौड़' में ज्यों का त्यों लिख डाला है। सपना काफी टेक्नीकलर था। विना किसी टिप्पणी के सपना यों है:

रिंग रोड पर जहां विजली का श्मशान है, वहां से एक टैक्सी अन्तर्राज्यीय वस अड्डे की तरफ जा रही है। रात हो गई है, लेकिन आसमान ऐसा सिलवर ग्रे (चमकदार सलेटी) है जैसे अभी-अभी सांझ हुई हो। मैं डिक्की की तरफ पैर करके टैक्सी की छत पर लेटा हूं। टैक्सी के मीटर की किटर-किटर, टैक्सी की पीली छत, वॉनेट सव मुझे वहुत ही चटख रंगों में दीख रहे हैं। नीचे टैक्सी ड्राइवर वहुत डूवकर अपने साथी को कोई किस्सा सुना रहा है। शायद उसे खयाल भी नहीं है कि मैं ऊपर लेटा हूं। लालकिले वाले तीनों गेरुआ पुलों के नीचे से गुजरते हुए मुझे पुलों की छतों वाली धारियां वहुत साफ दीखती हैं। छतें काफी नीची हैं। शायद गर्मी का मौसम है।

हम लोग अशोक होटल जैसे एक पोर्च में पहुंचते हैं। टैक्सी ड्राइवर वड़े अदव से दरवाज़ा खोलता है और मैं वड़े आभिजात्य से वाहर निकलता हूं। दरवान रास्ता दिखाता है। अव हम लोग एक खुली-सी जगह पहुंच गए हैं। यहां पार्टी चल रही है और लोग काले सूटों पर 'वो' लगाए हुए गिलासों में कुछ पी रहे हैं···मुलायम पेय। औरतें रंग-विरंगी साड़ियों में हैं। ऊपर खूवसूरत झाड़ और वल्वों की झालरें हैं। साड़ियों, झालरों और गुव्वारों के लाल, पीले, हरे रंग मुझे अलग-अलग दिखाई दे रहे हैं। पास ही सिर से कुछ ऊंची एक छत है, और उसपर वैंगनी रंग का मोटा-सा कालीन विछा है और उसपर लेटा मैं नीचे चल रही इस पार्टी को देख रहा हूं। मैं औंधा लेटा हूं और एकदम किनारे पर हूं। किसी तरह कुहनियों से अपने को नीचे फिसलने से रोके

हूं। अचानक मैं पाता हूं कि मेरी उठी हुई कहनियों और कालीन के बीच एक लड़की है। उसने कपड़े नहीं उतारे हैं। छत इतनी नीची है कि नीचे से अगर कोई गिलास ऊपर उठाए तो मैं आसानी से ले सकता हूं। मन में बड़ी अजीब-सी गोपन-प्रसन्नता है कि ये सब अपने राग-रंग, बहस-मुबाहिसे में ही मस्त हैं और इन्हें पता नहीं है कि मैं ऊपर लेटा हुआ इन्हें देख-देखकर मजा ही नहीं ले रहा, कुछ और भी कर रहा हूं। लेकिन भीतर बहुत बेचैनी भी है कि यह लड़की कौन है ? मैं किसी तरह उसकी शक्ल नहीं पहचान पाता हूं। या तो उसने चेहरा ढक रखा है या फिर चेहरा ही नहीं है। फिर अचानक कहीं वह लड़की चली जाती है और मैं ऐसी संकरी गली और गलियारों में भटकने लगता हूं, जैसी पानी के जहाजों में होती हैं—पतली-पतली गैंग-वे···

बिना चेहरे वाली इस औरत का खयाल मुझे काफी दिन परेशान करता रहा···आप ही बताइए, यह सपना क्या है ?"

•

दलीप कौर टिवाणा

दलीप कौर टिवाणा पंजाबी की एक प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। उसके एक पन्यास को साहित्य अकादमी एवार्ड भी मिला है। इस किताब के लिए लीप ने अपने जो सपने लिखकर भेजे हैं, वे सचमुच एक खोज के लिए बढ़िया ज़मीन हैं। सपने किसी भविष्य का इशारा भी हो सकते हैं; इस सोच में पड़-कर न मैं कहीं पहुंच सकती हूं, न पाठक, पर इस बात को खोज के हवाले करके, मैं दलीप के सपनों का एक-एक अक्षर संजोकर यहां दे रही हूं :

"मैं अपने सपनों को नींद का एक बावरापन समझकर हंस-भर नहीं देती, बल्कि उनसे चौंकती हूं। वैसे तो जैसे मैं समूची रात ही सपनों में चलती रहती हूं, पर कुछ एक सपने मुझे ऐसे भी याद हैं जिन्होंने रात के अंधियारे को लांघकर दिन के सफेद उजाले में भी मुझे परेशान किया।

ऐसा ही एक बहुत पुराना सपना है। अभी मैं पढ़ती ही थी, एक रात को सपना आया कि फूफाजी (उन बुआजी के पति जिनकी बेटी बनकर मैं बचपन से रही) जैसे मर गए हैं। मैं बहुत रोई। रोते-रोते जाग गई। मेरी आंखें अब भी आंसुओं से भरी थीं। बत्ती जलाई, चार बजे थे। खुद ही सोच लिया, कहते हैं सपने में जिस व्यक्ति की मौत हो उसकी उम्र बढ़ती है। यह सोचकर म ठिकाने पर आ गया, और मैं फिर सो गई। सुबह उठी, सपना याद था इसलि परेशान-सी मैं आंगन में धूप में बैठे अखबार पढ़ रहे फूफाजी के पास बैठ स्वेटर बुनने लगी।

'यह किसका स्वेटर है ?' उन्होंने पूछा।

'आपका।'

'मेरे पास तो कई हैं।' उन्होंने कहा।

'गुरवचन अकाली भाई साहब के लड़के का परसों ब्याह है ना, उसके लिए नया स्वेटर बनाकर दूंगी।' ऐसा बताया।

अखबार पढ़कर उन्होंने रसोई की दीवार के पिछली ओर बैठकर हमारे नौकर चरनी से घण्टे-भर तक बदन पर, टांगों, बांहों, सिर पर मालिश करवाई और फिर गर्म पानी से नहाए। दो अण्डे, पराठा, मक्खन और चाय का ब्रेक-फास्ट किया। बाकी रह गया अखबार पढ़ा। बड़ी बेजी के पास आकर बातें करने लगे। ग्यारह बजे फूफाजी कहने लगे कि मैं डॉक्टर जगदीशसिंह को मिल-कर आता हूं, कई दिन से पेट भारी-भारी-सा लगता है। सरसरी बातें हो रही थीं सो उठकर ऊपर कोठे पर चली गई, पता नहीं क्या करने। बाद में वह डॉक्टर के यहां जाने के लिए तैयार हो गए। छोटी बेजी कहने लगीं, 'मैं भी चलती हूं, साथ ही उसकी घरवाली से मिल आऊंगी।' कोठी से बाहर आकर फूफाजी ने पहले ड्राइवर को कार निकालने के लिए कहा, फिर खुद कह दिया, 'रहने दे अहमद, टांगा ही जोड़ ले।' अहमद अभी टांगा जोड़ ही रहा था, उन्होंने कहा, 'पास ही तो है, पैदल ही हो आते हैं।' सो पैदल ही चले गए।

छोटी बेजी बताती हैं, 'डॉक्टर के घर जाकर कुछ देर बातचीत करते रहे, फिर कहने लगे, 'डॉक्टर साहब, कुछ दिन से मेरा पेट भारी-भारी लगता है।' डॉक्टर जगदीश ने कहा, 'है तो आज इतवार, फिर भी हम हस्पताल चलते हैं। वहां चलकर देखते हैं क्या बात है।' पास ही हस्पताल था। पैदल ही चले गए। डाक्टर ने कहा, 'लेट जाओ, आपका ब्लड प्रेशर देखते हैं।' ब्लड प्रेशर देखने लगे तो फूफाजी बेजी को कहने लगे, 'बीबी, दीप को बुलाओ। ज़रूरी बात करनी है।' अहमद को टांगा लाने के लिए बेजी कहने दरवाज़े की ओर बढ़ी ही थी कि डाक्टर ने घबराकर नब्ज़ पकड़ते हुए कहा, 'यह तो गए!'

एक हिचकी-सी आई और खत्म हो गए। डॉक्टर जगदीश ने बताया कि दिल का पहला दौरा ही इनकी जान ले गया। घर से पैदल चलकर गए और घण्टे के अन्दर-अन्दर ही घर लाश आ गई।

मैं आज भी बड़ी हैरान-सी होकर सोचती हूं कि जिस दिन उन्हें मरना था, मुझे उसी रात उनके मरने का सपना क्यों आया था?

दलीप कौर टिवाणा

उनका अपना कोई वेटा-वेटी न होने के कारण यह एक कठिन मौत थी।
कुछ उलट-पलट हो गया था। उनका भोग पड़ जाने के काफी दिनों वाद
नके एक दोस्त सरदार जयसिंह हमारे पास आए। आकर वताने लगे। रात
मुझे सपने में भाई साहव दिखे थे। कहने लगे, 'वीवा को जाकर कहो, मेरा स्वेटर
तो वना दे।' उस दिन फिर मैं वहुत रोई। अस्तव्यस्त पड़े स्वेटर के पड़ते ढूंढ़े,
ऊन ढूंढ़ी। स्वेटर पूरा किया। उनके कपड़ों के साथ गंगाजी भेज दिया।'

"इसी तरह एक और सपना मुझे याद है। मैंने मन में स्यूसाइड एक पनाह
मान ली थी। जिन्दगी में न सुलझने वाले सवाल जव आंखों के सामने सिर के
वल खड़े हो जाते, तो हैरान-सी होकर मैं सोचती, इनसान जव चाहे अपनी
मर्ज़ी से अपनी आंखें क्यों नहीं मूंद सकता? एक दिन सपना आया जैसे मैं मर
गई हूं, और मरकर सफेद धुआं वन गई हूं। ड्राइंग रूम में वैठे सव वातें कर रहे
हैं। कुछ मैं भी कहती हूं पर कोई ध्यान ही नहीं देता, क्योंकि मेरी आवाज़
किसीको सुनाई ही नहीं दी। फिर मैं वेजी को कहती हूं, 'वेजी, मुझे वड़ी प्यास
लगी है।' वह हुंकारा ही नहीं भरते और न मेरी ओर देखते हैं। मैं झुंझलाक
उनका हाथ पकड़कर कहती हूं, 'वेजी मुझे प्यास...' पर उनका हाथ पकड़ा
नहीं जाता। मैं तो धुआं हूं। आधा धुआं उनके एक ओर निकल जाता है, अ
दूसरी ओर से। उन्हें पता ही नहीं लगता। उस वक्त लाचारी की, हाज़िर
हुए गैरहाज़री की जिस वेवसी में से मैं गुज़री, उससे परेशान होकर जाग
और जिस स्यूसाइड को मैंने सपनों-रहित नींद समझ लिया था, उसकी अस
उस सपने ने ऐसी स्पष्ट कर दी है कि अव तपती लूओं, ठिठुरी रातों
चलते तूफानों के वक्त की वह पनाह इन सवसे मुश्किल लगती है।"

"एक सपना और वताना चाहूंगी। ६१-६२ में सपना आया कि
गोपालसिंह दरदी को और मुझे भाषा विभाग, पंजाव वाले कोई इ
हैं। लगा, शायद अचेतन मन की कोई इच्छा दो रूप धारण कर
सपना मैंने डायरी में नोट कर लिया, पर किसीको नहीं वताय
गोपालसिंह दरदी का पंजावी साहित्य का इतिहास कभी
नहीं जानती थी कि वह कौन है। किसीसे पूछा कि डॉक्ट

दरदी जी जिंदा हैं? उसने कहा, 'हां, कोई काम है?' मैंने कहा, 'नहीं।' कुछ दिनों बाद पता लगा, भाषा विभाग, पंजाब वाले डॉक्टर गोपालसिंह दरदी को ऑनर कर रहे हैं, और मेरी कहानियों की किताब 'साधना' को एक हजार रुपये इनाम मिला है। मैंने सोचा, मेरी किताब को कैसे इनाम मिल सकता है, मैंने तो इनामी मुकाबले में किताब भेजी ही नहीं है। पर पता लगा कि भाषा विभाग में मेरा एक विद्यार्थी काम करता था, उसने खुद बाजार से किताब लेकर आखीरले दिन भाषा विभाग में इनामी मुकाबले में भेज दी थी।"

"एक और सपना याद है। बंगला देश की लड़ाई लगी हुई थी। मेरी दो बहनों के पति और एक मेरा भाई उस लड़ाई में गए हुए थे। इन दिनों की परेशानी को वही लोग समझ सकते हैं जिनके घर से लड़ाई पर गए हों। जब आसपास के परिचित या पड़ौसी के घर तार आता, तो सारे घर की जान सूख जाती। लखा भाई साहब (बहन का पति, जो फौज में कर्नल हैं) बता गए थे, जब तक कोई खबर न आए, समझना हम ठीक-ठाक हैं। शुकर-शुकर करके लड़ाई बन्द हुई। दोनों बहनों के घर वालों के तार आ गए कि ठीक हैं। दूर-पास के रिश्तेदारों के भी सुख-समाचार पहुंच गए। पर वीरे का (भाई का) कोई पता नहीं आया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन···पलटन को तार दिए, बहनों के घर वालों को दिए, आर्मी हेडक्वार्टर को फोन किए, आर्मी चीफ को भी तार डाला। हारकर दिल्ली की कैजुअल्टी लिस्टों में भी पता किया, पर कुछ पता नहीं लगा। बेजी कभी पाठ करने लगें, कभी रोने लगें। डॉक्टर दलजीतसिंह का सारा परिवार हमारे पास तमाम दिन टेलीफोन के पास बैठा रहे। मेरी सहेली अमृत कलेर, जो अब अमृत गुरम है, कभी दिलासा देने वाली बातें करे, और कभी बेजी के साथ खुद भी रोने लग जाए। सारी-सारी रात आंखों में गुजर जाती। एक दिन मैं गोली खाकर सो गई कि शायद सपने में ही वीरा दिखाई दे जाए कि वह किस हाल में है। रात को सपना आया, वीरा छोटा-सा कहीं गुम हो गया है। मैं बहुत रो-रोकर आवाजें दे रही हूं—'वीरे! वीरे!' कितनी ही आवाजें देने के बाद 'वह' दूर एक पेड़ पर से बोला, 'बहनजी, मैं यहां हूं!'

मेरा जी ठिकाने आ गया कि वह कहीं न कहीं जिन्दा है। अगले दिन

सके एक दोस्त की चिट्ठी आ गई कि पिछले दिनों वायरलेस के द्वारा खबर मिली है कि वीरा ठीक-ठाक है। वे किसी ऐसी जगह पर थे जहां के सारे रास्ते कट गए थे। फिर छुट्टियों में आया वीरा बताने लगा, 'बहनजी ! एक जगह अंधेरे में चलते दुश्मन के बिलकुल ऊपर चले गए। जब हेवी शेलिंग होने लगी तो एक जगह हम लाशों में लेट गए। सिद्ध मुझे कहने लगा, वीरे, मरियो ना ! नहीं तो मैं तेरे घर वालों को क्या लिखूंगा ! —और फिर जब चारों तरफ लाशें ही लाशें दिखीं, तो हो रही फायरिंग में ही पेड़ पर चढ़ गए। साथ ही डर लगे, कहीं कोई साला दुश्मन पहले ही ऊपर ना बैठा हो। आम यह उसूल है कि रात को लड़ाई नहीं होती, पर इस लड़ाई में कोई उसूल-असाल नहीं रहा था। सारी-सारी रात भी लड़ाई होती रही है...

लखा भाई साहब बताने लगे कि जब कभी रोटी खाने लगते तो ग्रास मेरे गले में अटक जाता कि कल को इस समय जब रोटी खाएंगे तो पता नहीं मेरा कौन-कौन-सा अफसर होगा और कौन-कौन-सा नहीं होगा, और इसी तरह पता नहीं कौन-कौन-सा जवान होगा और किस-किसके घर चिट्ठियां लिखनी पड़ें। और क्या पता मैं भी होऊं कि नहीं।"

"इन सपनों के अलावा कुछ सपने ऐसे भी हैं जिनके अर्थ मेरी समझ में ए। जैसे, मुझे एक बार सपना आया कि एक अंग्रेज़ साधु मुझे क कि तू हेमिंग्वे सारा पढ़ ले। हेमिंग्वे की बहुत सारी किताब मैंने खरी ीं पर अभी तक केवल दो-तीन ही पढ़ी होंगी। पता नहीं वह अंग्रे कौन था, और मुझे हेमिंग्वे सारा पढ़ने के लिए क्यों कह गया।"

"फिर एक और सपना है जो कई सालों से बहुत बार आया है जैसे मैं कहीं जा रही हूं, कभी स्टेशन पर खड़ी हूं कभी कह रही हूं, पर तो जैसे मैं पहले भी कभी आई हूं।' कभी जैसे गाड़ी छूट गई। आने वाली है। इस सपने के दौरान एक उदासी और कचोट-सी ह और घबराहट-सी में मैं जाग जाती हूं।"

"एक बार माली ने मां के घर-आंगन में थमले के पास गुल

के अपने चार बरस

बेल लगाई। बेल बढ़कर कोठे तक चली गई। टहनियां सारी खिड़की के आगे फैल गईं। दो बरस गुज़र गए, उसको कोई फूल न लगा। माली कहने लगा, 'इसको फूल नहीं लगते, उखाड़ देता हूं।' मैंने कहा, 'नहीं, रहने दे। क्या खबर लग ही जाए।' उस रात मुझे ऐसा सपना आया जैसे आंगन में बेल पर बड़ा ही सुन्दर प्याज़ी रंग का फूल लगा है। अगले दिन मैंने माली को कहा, 'बेल नहीं काटना, इसमें फूल लगेंगे।' कुछ दिनों बाद उस बेल पर प्याज़ी रंग का एक फूल लगा। फूल बहुत दिन खिला रहा। पर उस फूल के बाद फिर कोई फूल न लगा। चैत-वैशाख के महीने माली ने सारी बेल काट दी और उसकी जड़ के पास नयी कलम जोड़कर कतरन बांध दी।"

"एक बार सपना आया जैसे अमेरिका में रह रहे हरनेक (मेरी छोटी बहन का पति) की शक्ल बहुत बिगड़ गई। सारा चेहरा जैसे कट-फट गया हो। मन ही मन कहा, हाय खुदा! मां-बाप का इकलौता बेटा है, और फिर कंवल (उसकी पत्नी) के सदके, उसको हर बला से बचा लेना। बड़ा शुकर किया, जब कंवल और हरनेक की तरफ से कोई चिट्ठी या तार न आया। दो महीने बाद अमेरिका से उसका दोस्त आया। पूछा, 'हरनेक ठीक-ठाक है?' बोला, 'बिलकुल।' मैंने कहा, 'मुझे बड़ा खराब सपना आया था कि जैसे उसकी शक्ल बहुत बिगड़ गई है।' वह बोला, 'शक्ल तो नहीं, पर वह आप बिगड़ गया है। पर यह ना कहना कि मैंने तुम्हें बताया है।'"

"मेरे श्रीमानजी प्रो० भूपेन्द्र साहब जब विलायत गए थे, लोग कोई मज़ाक से, कोई संजीदगी से कहते, 'अब उन्हें लौटकर नहीं आना है। विलायत से भी भला कोई व्यक्ति लौटकर आया है।' मैं कहूं, 'दो महीने तक जब छुट्टियां खत्म होंगी, ज़रूर आ जाएंगे।' बीस दिनों बाद मुझे सपना आया, वह आ गए हैं। सोचा, यह तो ज़रूर मेरी इच्छा ने सपने का रूप धार लिया है। नहीं तो दस हज़ार रुपये खर्च करके जब कोई जाता है तो इतनी जल्दी थोड़े ही लौट आता है। अगले दिन इनकी चिट्ठी आ गई, 'मैं जल्दी आ रहा हूं!' और अभी महीना भी नहीं बीता था कि वह वापस भी आ गए।"

"और वहुत सारे सपनों में से एक सपना याद है कि एक रात सपने में मेरे ाँवल 'एह हमारा जीवणा' की भानो आई। आकर कहने लगी, 'वड़ी मुश्किल से आपका घर ढूंढ़ा है। मैं तो चलती-चलती हार गई। काला राज़ी है? मैं गंगा नहाने चली हूं, सोचा मिल लूं, और अपने भाई नरैण को कहना, मेरा फिकर काहे करता है।' और जव मेरी आंख खुली तो लगा जैसे सच में भानो आई थी।"

"सपनों में मैं कई अनदेखी जगहों पर चलती रहती हूं। एक वार समुद्र की तह में उगे किसी शहर में अपने किसी परिचित को मिलकर आई। एक वार पहाड़ की किसी गुफा में किसी सदियों पहले के ऋषि को नमस्कार कर वातें कर रही थी। कुछ पूछ रही थी।"

"ऐसे सपने और भी लोगों को आते होंगे और कई वार सच्चे सपने भी। इसीलिए मुझे लगता है कि सपनों का भी एक संसार है। सचमुच का संसार और कभी-कभी मेरा कोई सपना जव नींद से चलकर दिन के सफेद उजाले भी आ पहुंचता है, मैं हैरान होकर उसकी ओर ताकती हूं, और इसी त जागते हुए मैं जो सपने देखती हूं, वे काले अक्षर वन जाते हैं।"

फ्रैंकाइस

दलीप टिवाणा के सपने पढकर मुझे फ्रासीसी चित्रकार फ्रैंकाइस का वह सपना अनायास याद आया है जो पाब्लो पिकासो को मिलने से कोई एक वरस पहले उसे आया था, और जो उसने पिकासो को मिलने से कुछ महीने बाद अपनी डायरी में लिखा हुआ सुनाया था : "ऐतिहासिक स्मारक देखने के लिए मैं उस बस में जा रही हू, जो यात्रियो को वे स्मारक दिखाती है। एक जगह एक म्यूजियम देखने के लिए हम सब लोग बस मे से उतरते हैं तो वह हमे एक भेड़ों के बाड़े मे ले जाते है। वहा अन्दर बहुत अधेरा है। पर मैं देख सकती हू कि अन्दर कोई भेड़ नहीं। हैरान होती हू कि वह मुझे वहा क्यों लाए है कि देखती हू कि बाड़े के बिल्कुल बीच मे एक बच्चागाडी पडी हुई है। गाडी के अन्दर और बाहर लटकती दो पेंटिग्स हैं। एक इंगरस की बनाई पोर्ट्रेट, और एक रूसो की छोटी-सी पेण्टिग। एक बच्चागाडी के हैण्डल के साथ लटक रही है, और दूसरी गाडी में पड़ी हुई है।"—और फ्रैंकाइस जब पिकासो से हुए अपने बच्चे के जन्म के समय हस्पताल जाती है तो हैरान होती है—दोनों नर्सों के वही नाम हैं—एक इगरस और दूसरी मैडम रूसो। पिकासो को भी फ्रैंकाइस का सपना याद आता है और वह क्लीनिक के मनोविशेषज्ञ से भेड़ों के बाड़े का विश्लेषणी अर्थ पूछता है। डॉक्टर बताता है कि भेड़ों के बाड़े का चिह्न बच्चे की पैदाइश से सम्बन्धित है।

गुरदयालसिंह

श्री गुरदयालसिंह पंजाबी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। इनके एक ास को अकादमी एवार्ड भी मिला है। इनके शब्दों में 'सपने ज्यों संसार' वर्णन इस तरह है :

"बचपन में आम सपने ऐसे आते थे कि मेरे पीछे बिल्ली या बन्दर पड़ गया । मैं चीखता उनके आगे भागता और जाग जाता। कई बार चीख मारकर ही ागता। कई बार 'ऊं-ऊं' करता रहता तो मां जगा देती। इस उम्र के सपने अब याद नहीं रहे।"

"कुछ बड़ा हुआ तो बड़े खूबसूरत सपने आने लगे। हमारी एक पड़ोसिन लड़की बहुत खूबसूरत थी। महीने में पच्चीस दिन उसके या उस सरीखी लड़की के सपने आते रहते। पर जल्दी से ब्याह हो गया। मेरी साथिन उस लड़की से कम सुन्दर नहीं थी। अब सपनों में मेरी साथिन भी शामिल होती। पर उसके ज्यादा सपने तब आते, जब वह मायके गई होती। यह रंगीन सपनों की उम्र थी। उनकी रंगीनी में से भी अब कोई रंग बाकी नहीं रहा, जिन्दगी की गहन धुंध ने सारे सपने सफेद बादलों की तरह अलोप कर दिए हैं।"

"पिछले बीस-पच्चीस बरस से शायद कोई खूबसूरत सपना नहीं आया होगा बस, इतना-भर याद है कि एक बार जब मैं कसौली (पहाड़ी शहर) रहता था वहां एक बहुत खूबसूरत लड़की, मेरी कोठरी के सामने, एक अच्छे घर में रह

थी। उसके नयन-नक्श और शक्ल-सूरत कभी भी सचमुच के नहीं लगते थे। लगता था कि वह ऐसी स्वप्नपरी थी जिसका रंग-रूप मुझे किसी दूसरे संसार का लगता! उसके सपने मुझे बहुत लम्बे समय तक आते रहे। वह भी अब याद नहीं रहे।"

"पर जो सपने मुझे कभी नहीं भूलते, वे ऐसे हैं जिनका मेरी निजी जिन्दगी से कोई सम्बन्ध नहीं। उनकी याद सदा कांटे की तरह चुभती रही है। जब भी चाहूं, उन्हें याद कर सकता हूं। ऐसा एक सपना पहला नॉवल *'मढ़ी का दीवा'* लिखते समय आया था। यह सपना एक दिन तब आया जब इस नॉवल का वह काण्ड लिख रहा था जिसमें रौनकी और जगसीर कुछ मन की बातें करते हैं, पीछे मे भानी और उसकी साथिनें जागो लेकर आती हैं। रौनकी को गेंद की तरह लुढ़का जाती हैं। सपना कुछ इस तरह था :

एक पहाड पर काले भूरे बादलों की परछाइयां फैली हुई है। पहाड़ पर बर्फ जमी हुई है। पर चोटी से नीचे बड़े हरियाले पेड़ हैं। फसलें लहलहा रही है। पहाडी पर से एक अधनंगा आदमी कंधे पर हल रखे आ रहा है। एक बैल उसके आगे है, एक पीछे। आगे का बैल सफेद है, पीछे का हरा। वह आदमी ज़ोर-ज़ोर से हेक लगा रहा है। बादलो में उसकी आवाज गूंज रही है। 'तू कहा जाएगा?' मैं उसके पास जाकर पूछता हू। 'तू क्या करेगा पूछकर?' वह आदमी गुस्सा होकर मेरी ओर घूरता है। मुझे अचानक खयाल आता है, किसी भी काम पर जा रहे आदमी से 'किधर जाना है?' पूछना बदशगुनी होती है। मैं चुप कर जाता हूं। वह आदमी पलो-क्षणों मे अलोप हो जाता है। पर उसकी आवाज़ मुझे सुनाई देनी रहती है। जब पहाड की चोटी से नीचे को उतरा देखता हूं तो सफेद कपडो वाली एक औरत, सिर पर लस्सी की घड़िया और रोटियां रखकर उन-पर दिया जलाए उस हल वाले आदमी के पगचिह्नों पर बढ़ती चली जा रही है। दिये के प्रकाश से चौगिर्द ऐसे उजाला हो गया है जैसे सूरज चढ आया हो। हल वाला आदमी मुझे फिर दिखने लगता है। उसके पास न बैल हैं, न हल। पगडी की जगह अब सिर पर एक कलगी लगी हुई है। उसका कद बहुत लम्बा हो गया है। उसने राजाओं वाले वस्त्र पहने हुए हैं। एक हाथ में तलवार और एक मे ढाल है।

गुरदयालसिंह

श्री गुरदयालसिंह पंजाबी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। इनके एक उपन्यास को अकादमी एवार्ड भी मिला है। इनके शब्दों में 'सपने ज्यों संसार' का वर्णन इस तरह है :

"बचपन में आम सपने ऐसे आते थे कि मेरे पीछे बिल्ली या बन्दर पड़ गया है। मैं चीखता उनके आगे भागता और जाग जाता। कई बार चीख मारकर ही जागता। कई बार 'ऊं-ऊं' करता रहता तो मां जगा देती। इस उम्र के सपने अब याद नहीं रहे।"

"कुछ बड़ा हुआ तो बड़े खूबसूरत सपने आने लगे। हमारी एक पड़ोसिन लड़की बहुत खूबसूरत थी। महीने में पच्चीस दिन उसके या उस सरीखी लड़की के सपने आते रहते। पर जल्दी से ब्याह हो गया। मेरी साथिन उस लड़की से कम सुन्दर नहीं थी। अब सपनों में मेरी साथिन भी शामिल होती। पर उसके ज्यादा सपने तब आते, जब वह मायके गई होती। यह रंगीन सपनों की उम्र थी। उनकी रंगीनी में से भी अब कोई रंग बाकी नहीं रहा, ज़िन्दगी की गहन धुंध ने सारे सपने सफेद बादलों की तरह अलोप कर दिए हैं।"

"पिछले बीस-पच्चीस बरस से शायद कोई खूबसूरत सपना नहीं आया होगा। बस, इतना-भर याद है कि एक बार जब मैं कसौली (पहाड़ी शहर) रहता था तो वहां एक बहुत खूबसूरत लड़की, मेरी कोठरी के सामने, एक अच्छे घर में रहती

थी। उसके नयन-नक्श और शक्ल-सूरत कभी भी सचमुच के नहीं लगते थे। लगता था कि वह ऐसी स्वप्नपरी थी जिसका रंग-रूप मुझे किसी दूसरे संसार का लगता! उसके सपने मुझे बहुत लम्बे समय तक आते रहे। वह भी अब याद नहीं रहे।"

"पर जो सपने मुझे कभी नहीं भूलते, वे ऐसे है जिनका मेरी निजी जिन्दगी से कोई सम्बन्ध नहीं। उनकी याद सदा काटे की तरह चुभती रही है। जब भी चाहूं, उन्हें याद कर सकता हू। ऐसा एक सपना पहला नॉवल 'मढ़ी का दीवा' लिखते समय आया था। यह सपना एक दिन तब आया जब इस नॉवल का वह काण्ड लिख रहा था जिसमे रौनकी और जगसीर कुछ मन की बातें करते हैं, पीछे से भानी और उसकी साथिनें जागो लेकर आती है। रौनकी को गेंद की तरह लुढका जाती हैं। सपना कुछ इस तरह था :

एक पहाड पर काले भूरे बादलो की परछाइयां फैली हुई है। पहाड पर बर्फ जमी हुई है। पर चोटी से नीचे बडे हरियाले पेड हैं। फसले लहलहा रही हैं। पहाडी पर से एक अधनगा आदमी कधे पर हल रखे आ रहा है। एक बैल उसके आगे है, एक पीछे। आगे का बैल सफेद है, पीछे का हरा। वह आदमी जोर-जोर से हेक लगा रहा है। बादलो मे उसकी आवाज गूज रही है। 'तू कहा जाएगा?' मैं उसके पास जाकर पूछता हूं। 'तू क्या करेगा पूछकर?' वह आदमी गुस्सा होकर मेरी ओर घूरता है। मुझे अचानक खयाल आता है, किसी भी काम पर जा रहे आदमी से 'किधर जाना है?' पूछना बदशगुनी होती है। मैं चुप कर जाता हूं। वह आदमी पलो-क्षणों मे अलोप हो जाता है। पर उसकी आवाज मुझे सुनाई देती रहती है। जब पहाड़ की चोटी से नीचे को खतरा देखता हू तो सफेद कपड़ो वाली एक औरत, सिर पर लस्सी की घडिया और रोटियां रखकर उन-पर दिया जलाए उस हल वाले आदमी के पगचिह्नो पर बढती चली जा रही है। दिये के प्रकाश से चौगिर्द ऐसे उजाला हो गया है जैसे सूरज चढ आया हो। हल वाला आदमी मुझे फिर दिखने लगता है। उसके पास न बैल है, न हल। पगडी की जगह अब सिर पर एक कलगी लगी हुई है। उसका कद बहुत लम्बा हो गया है। उसने राजाओं वाले वस्त्र पहने हुए हैं। एक हाथ में तलवार और एक मे ढाल है।

और अचानक आसमान में बिजली कड़कती है। पलों में बुआंधार मेंह बरसने लगता है। ओले भी पड़ते हैं, तूफ़ान आता है। सारे पेड़ जड़ से उखड़ जाते हैं। उस सफ़ेद कपड़ों वाली औरत के सिर पर रखा दिया बुझ जाता है; पर इस अंधे तूफान में भी उस दिये सरीखी किसी और चीज़ का प्रकाश इर्द-गिर्द को प्रकाशित किए जाता है। मुझे सब कुछ दिख रहा है। अडोल-शान्त खड़ी औरत भी और राजा सरीखा वह हल वाला आदमी भी।

"फिर अचानक सब कुछ बदल जाता है। एक वीरान, खंडहरों की वादी में वे दोनों जने मुझे फिर नज़र आते हैं। औरत के कपड़े अब मैले हो गए हैं। उसका परियों सरीखा रूप ढल गया है। हल वाला आदमी बूढ़ा होकर झुक गया है। उसके सिर पर कलगी की जगह अब मैली फटी पगड़ी है। वे दोनों कुछ बातें करते हैं। फिर यूं ही अचानक अलोप हो जाते हैं। इस उजाड़ बियाबान में अब सिर्फ दिये का प्रकाश बाकी है। सारे खंडहर चमक रहे हैं—सूरज सरीखे दिये के प्रकाश से।

और इस बार वह औरत और मर्द आसमान में उड़ते नज़र आते हैं। मैं नज़र टिकाकर उनकी ओर देखता रहता हूं। वे धीरे-धीरे दो छोटे-छोटे तारों की तरह दिखने लगते हैं। एक बार फिर घोर अंधियारा छा जाता है। मुझे अपना दिल डूबना-सा लगता है। जब जागता हूं तो शरीर पसीने से भीगा हुआ होता है। आधी रात पीछे नींद नहीं आती।

कई दिन और कई रात इस सपने में देखे दृश्य से मेरा मन पता नहीं क्यों बड़ा बेचैन रहा। इस सपने में कोई ऐसी अजीब या भयानक घटना नहीं घटी थी। पर आज तक वह नहीं भूलता। पता नहीं इसका सम्बन्ध मेरी मानसिक स्थिति से था या मेरी क्रियात्मक दशा से। पर कभी-कभी लगता है कि सांसारिक जीवन और सपनों का सम्बन्ध कहीं न कहीं ऐसी जगह जा मिलता है, जिसकी सीमा हमारी बौद्धिक शक्तियों की पकड़ से कहीं दूर होती है।"

गोविन्द मिश्र

किसीने समय को अपने पलंग के पाये से बांधा था—यह वार्ता हमारे मिथहास का हिस्सा है, हमारी जिन्दगी के किसी अनुभव की हकीकत नहीं। पर किसके सपने हैं, जो रातों को इसके जादू का जाल हमारी आंखों के आगे नहीं बिछा जाते! हिन्दी के शायराना स्वभाव वाले पर गंभीर चिन्तन के लेखक गोविन्द मिश्र ने अपने सपनों की बात करते हुए इस पहलू को विशेष तौर पर सामने रखा है :

"मेरे सपने! इस नाम से कोई चीज़ उठकर सामने नहीं झूलती। ख्वाब ...नहीं याद पड़ता कि बचपन में कुछ देखे थे...हां, [illegible] के साथ होना शुरू से ही अच्छा लगता था।

दरअसल, यह मेरी उस खुरदुरी ज़मीन की ही करामात है कि मैंने सपने कभी नहीं देखे। जो मुलायम-मुलायम क्षण उस समय भी जीने को मिलते थे... उन्हें तो खूब रस ले-लेकर जीता था...सपने फिर भी नहीं देखता था...शायद इसीलिए कवि न होकर गद्यकार बना।

आज भी मेरे सपने कोई नहीं हैं...वे जो रात [illegible] गुज़रते हैं, ...उन्हें सपना कैसे कहूं। मैं तो ज़मीन हूं...[illegible], [illegible] रेशमी छिड़काव कर गुज़र जाते हैं...थोड़ी देर बाद फिर धूल ही धूल।

मुझे धूल से कोई शिकायत नहीं है, [illegible]; [illegible] जिन्दगी को नहीं बहलाता, जिन्दगी मुझे [illegible] है...[illegible] पहचानने, समझने की [illegible],

मैं उनके पीछे इसलिए भागता हूं…

रात की बड़ी जीवन्त दुनिया—देखता हूं कि एक पूरे का पूरा उपन्यास मेरे द्वारा लिखा जा रहा है…उसका सारा कायाकल्प अपनी पूरी बारीकी में, निहायत सफाई से खुलता जाता है…एकदम चुस्त-दुरुस्त चीज़, कथा के सारे आयाम अपनी विराटता में। यह वही चीज़ होती है जो लिखे जाने के ठीक पहले पूरे जीव को मथती रहती है…यथार्थ से स्ट्रक्चर्ड रियलिटी की उठती-बनती सीमाएं, फार्म को लेकर कशमकश और सबसे ऊपर वह वेदना, छटपटाहट… कहीं कोई रास्ता नहीं दिखाता…कि फिर सपने में सब कुछ खुल जाता है, भड़ाक से।

जागता हूं तो सब कुछ फिर फिसल जाता है…जैसे जिन्दगी जिई जाकर भी परायी रहती है। अगर ठीक सपने जैसा ही उपन्यास लिख जाता तो दुनिया की एक बड़ी कृति बन जाती…मगर कुछ भी याद नहीं रहता, सिर्फ बड़ी ही मोटी-मोटी बातें याद रहती हैं जो लिखी जाकर और भी बासी हो जाती हैं… फिर भी सचेतन से बहुत ही ज़्यादा ताज़ा। मैं इनका खूब इस्तेमाल करता हूं… जो कुछ जितना भी हाथ आ सके। सपना टूट जाता है तो उठकर बटोरने बैठ जाता हूं…कभी लिखने के दौरान जब कहीं से कुछ रास्ता दिखाई नहीं देता तो यह सोचता हुआ सो जाता हूं कि शायद सपने में कुछ हो जाए…

कोई ज़रूरी नहीं कि सपने सोने पर ही आते हों…जागने और सोने के बीच की जो अर्द्धमूर्छित-सी स्थिति होती है उसमें भी आते हैं…जीवन में टॉर्च की तरह सीधी रोशनी फेंककर चीज़ों को साफ करते हुए…चीज़ें जो यों ही बहुत पेचीदा होती हैं और जिन्हें हमारे पेचीदा व्यक्तित्व और भी पेचीदा बना डालते हैं। कितने दिनों से विषाद की मन पर ज़बर्दस्त छाया थी—प्यार की लपेट कसती जा रही है, एक अनुभव किशोरावस्था में हुआ था, जला क्या, अच्छा-खासा भूना था उसने…सोचता था कि चलो अपने हिस्से का ज्वार और खार दोनों ही उस उम्र में ऊपर से गुज़र गए जब बहुत कुछ कुचले जाकर भी जिन्दा रह लेने की कूवत थी…और रहे भी आए…लेकिन अब क्या गीदड़ को फिर मौत आई है कि शहर की तरफ भाग रहा है? अजीब हैरत हुई, यह महसूस करके कि प्यार की कोई उम्र नहीं होती…ठीक पहले जैसा ही…चांदनी से झरती हुई मिठास, अपनी आभा से सारी दुनिया आलोकित करती हुई…एक

ध्वनि में उठती हुई खुशबू सारी दुनिया को महकाती हुई···उससे सटकर खड़े होते ही देवत्व की सरहदों तक उठ जाना···

मेरा जागता हुआ आदमी कहता था कि इस भागती, तरक्कीपसंद दुनिया के चतुर व्यक्ति के पास प्यार की बेवकूफी के लिए समय है क्या ? प्यार की आंच से संतुलित व्यक्ति क्या बिखर नहीं जाएगा···वह सिर्फ सम्बन्ध रखता है, अपने सामाजिक जीवन को रंगारंग रखने के लिए। सफल व्यक्ति बने रहने के लिए खुद को आदमियों, सम्बन्धों और चीजों के ऊपर रखना है...चतुर जो है ! जब कि प्यार में तो नीचे जाना पड़ता है, चतुराई और दिमागदारी के। दुनिया तुम्हारा उल्लू बना रही है···अब की बार ऐसे झुलसोगे कि फिर कुछ भी नहीं बचेगा···निरुद्देश !

कि तभी एक दिन सपने में सब कुछ साफ हो गया···पीली साड़ी में लिपटी एक सफेद धुली हुई मूर्ति मुझे अपनी गोद में लिटाए थी, ऊबड़-खाबड़ जिन्दगी को भी संवरने का सुख देती हुई। दो चीजों पर कौंधाती हुई रोशनी पड़ी और वे सपने के बाद भी मुझे याद रह गईं···साहित्यकार को कुछ नहीं मिलता···लगातार जलते जीवन की मिठास ऐसे ही मिलती है···सरस्वती इसी तरह कोई आधुनिक शक्ल बन इस सुलगती कौम को बीच-बीच में आकर वह जीवन्तता दे जाती है जिसके बगैर साहित्य रचना तो दूर, उसमें विश्वास ही रख पाना मुश्किल होता है। दूसरे, लगा कि अगर हम यह जानते हैं कि मर तो जाना ही है, तो पहले ही क्यों नहीं आत्महत्या कर लेते···तो प्यार में जलने का डर क्या है···हैरानी होती रही कि इतनी मोटी बात सपने में जाकर सूझती थी ! यह मेरा गद्यकार था जो इस सबपर हंसता है और कहता है कि तुम्हारे हाथ में न तो लपेट को थमना है और न उससे बचना। तुम तो वही करोगे, जो जिन्दगी तुमसे कराएगी···सिर्फ उसी मंझधार पर बहते रह सकते हो।

जिन्दगी का दुर्भाग्य कि हम सिर्फ आगे ही आगे जाते हैं···अतीत में ठीक वैसे ही फिर से उतरने की कोशिश करो तो इतना बर्जीद लगता है कि खुद ही अचकचाकर भाग खड़े होते हैं। एक सपने में ही यह संभव है कि हम अपने साथ-साथ समय को भी लपेटकर पीछे ले जा सकते हैं और इस तरह अतीत को हू-ब-हू पहले जैसा जी लेते हैं, अक्सर आज और आने वाले कल का घोल भी तरह-तरह से मिलाकर···प्राहा का होटल इण्टरनेशनल···ऊपरी मंजिल के कमरे

गोविन्द मिश्र

सामने के पहाड़ी जैसे इलाके के दरख्त खूब दिखते हैं···पिछली रात की बारिश से धुले दरख्त···खिड़की से उन्हें तकता हुआ मैं अपनी पहचान बैठाने में लगा हुआ हूं···लगता है जैसे मेरे साथ कुछ मरने जैसी चीज़ हुई थी पिछली रात। सिर्फ सपना नहीं था वह, बाकायदे उस दुनिया में जाकर रहा था···रहकर आया था···अभी भी लौट रहा था धीरे-धीरे···

मैंने देखा कि मुझे जर्मनी जाना है (जिस ट्रिप पर मैं निकला भी हूं), इलाहाबाद में उसे खबर देकर, मिल-मिलाकर बांदा आ जाता हूं अपने मां-बाप से मिलने···छत पर जाता हूं और उधर अपने छत पर वह है···इलाहाबाद से मेरे पीछे-पीछे आ गई जैसे अक्सर करती थी···वही यूनिवर्सिटी का ताज़ा-ताज़ा जीव···फिर वैसा ही मिलना, वही बातें···और मन पर बिछती वही ताज़गी···

फागुन की रातों के अन्तिम प्रहर चांद बांदा में अब भी वैसा ही होता है ···हलका पीला, नम···आने वाले इम्तहानों के लिए छटपटाहट वैसे ही उतारता हुआ···छाती में बाईं तरफ फुरफुरी जो तब तक धुकधुकाती रहती है, जब तक प्रिय से मिल न लो···लेकिन हम कहां हैं···नून, तेल, रोटी की दौड़ में बूढ़े हो रहे हैं। उसकी अब की सूरत से दर्जनों बार मिला हूं, लेकिन सपनों में जब-जब वह आती है, उन्हीं दिनों की पूरी ताज़गी में। मैं कहां का कलाकार हूं जो कहूं कि उसकी प्रेयसी कभी बूढ़ी नहीं होती···हां, सपने अलबत्ता उसे बूढ़ा नहीं होने देंगे।

मैं चाहता हूं कि खूब सपने आया करें, आते रहें।

सरस्वती कहती है कि तुम खुद पर ज़रूरत से ज़्यादा लिखने लगे हो··· ठीक कहती है···लेकिन उधर अमृता थीं। चलो, अब लौं नसानी, अब न नसैहों!"

देवेन्द्र

देवेन्द्र पंजाबी का वह कहानीकार है जिसने ब्याह तो कहानी कला से किया है, पर इश्क शायरी में और चित्रकला में। उसके पास एक डायरी है, जिसमें कोई तिथि नहीं, कोई वार नहीं, सिर्फ हादसे और सपने दर्ज हैं। ये सपने देवेन्द्र की उसी डायरी में से हैं :

"उस बूढ़े ने छः की छः किताबें निकालकर मेरे सामने रख दीं और थैला खाली करके बोला, 'यह बड़ी कीमती और नायाब किताबें हैं, संभालकर रखना।'

किताबें वास्तव में बड़ी ही नायाब थीं। इमरोज़ ने शिव को इलस्ट्रेट किया था; एक सफा नज़्म, एक तसवीर; एक नज़्म, एक तसवीर'''। चुगताई साहब ने फैज़ और अमृता को इलस्ट्रेट किया था। दो नम्बर थे, एक 'फनून' का, एक 'नकूश' का और एक पन्द्रह साला 'नागमणि' का खास अंक, जिसमें मेरी कई कहानियां थीं।

मैंने जेब टटोली—जेब खाली थी। 'कितने पैसे ?' मैंने पूछा, और उदास हो गया। 'पैसे मैं आकर फिर ले लूंगा, पर किताबें संभालकर रखना।' उसने ताकीद की और चलता बना। मैंने किताबों को बगल में रखा और सोचने लगा, इनको तो इस शहर के शोरगुल में खोलकर देखना भी अवज्ञा है। चलो किसी हरियाली और एकान्त में चलकर पढ़ते हैं। मैं दौड़ने लग पड़ा, दौड़ पड़ा, दौड़ता-दौड़ता उड़ने लग पड़ा। हैरान था, किताबों ने तो मुझे उड़ना भी सिखा दिया।

उड़ रहा था। हवा की लहरों में महक थी। नीले आकाश में उड़ान भरते पहाड़ों की तरफ मुंह कर लिया। ऊपर से ऊपर उड़ता जा रहा था और रहा था कि उड़ना तो आ गया है, अगर उतरना न आया तो क्या होगा? किताबें मेरे हाथ से गिरने को हो रही थीं कि मैं एक ऊंचे पहाड़ की चोटी ा उतरता हूं। और एक किताब, जिसको मैंने पढ़ा नहीं, जो बड़ी खूबसूरत री बगल में से सरककर नदी में जा गिरती है। मेरा दिल धक् करके रह है। जैसे किताब न हो, मेरी बच्ची हो। राणो का आंसू हो, अमृता की ड़की हो, विरदी का खत हो! इमरोज़ की तसवीर हो। जिन्हें मेरे हाथ से ने का कोई हक नहीं।

जो गिर पड़ा। मैं उसको झुककर उठाने लगता हूं तो नदी खड्ड बन जाती जिसके किनारे पर दलदल फैल गई है। रुआंसा होकर मैं उस किताब की र देखता हूं; पानी में पड़ी किताब हंस रही लगती है। पानी के किनारे पर लदल में अनगिनत छोटे-छोटे केकड़े-से रेंगने लग पड़े हैं। मैं आगे बढ़ता हूं तो ह मगरमच्छ बनकर मेरी ओर बढ़ने लग पड़ते हैं।

मैं चीखें मारता हुआ वापस कदम उठाता हूं तो वह घाटी जहां हरियाली, खुशबू और नदियां थीं, तपता सहारा बन जाती है, जिसकी नुकीली चट्टानों की पगडण्डी पर मैं चलता जा रहा हूं। आसपास खड्डे ही खड्डे हैं।

मैं हर रात इस पगडण्डी पर अकेला चलने लगता हूं···पता नहीं कब यह सफर खत्म होगा···"

"पिछले दिनों मैं अमृतसर गया तो वागा भी गया था। उस शहर की ओर मुंह करके सजदा गुज़ारने के लिए जहां मेरे बचपन का यार बशीरा है। मेरा भाटी दरवाज़ा है। वे गलियां हैं जहां छुपन-छुपाई और चोर-सिपाही खेलते हुए मैं पहली बार कहानी लिख बैठा था। उस शहर को दूर-दूर से सलाम करने के लिए जिसे फैज़ साहब रोशनियों का शहर कहते हैं। मैंने सलाम करने के बाद इधर-उधर देखा कि कोई देखता तो नहीं। और मैं सीमा पार कर आया। किसीने देखा नहीं, रोका नहीं, टोका नहीं। मेरे साथ अन्धे लोगों का काफिला है। मैं भाटी दरवाज़े आ गया हूं जहां फैज़ साहब हैं, चुगताई साहब हैं, कतील शिफाई हैं, मुनीर नियाज़ी और फखर ज़मां साहब हैं। नूरजहां और इकबाल

वानों हैं, जमीला हाशमी और सतनाम महमूद हैं। मशकूर साबरी और हनीफ चौधरी है। मैं सबसे बशीरे का पता पूछता हू, अनवरी आपा का पता पूछता हूं। कोई बोलता ही नहीं। आखिर मैं नजीर चौधरी को कहता हू, 'चौधरी साहब! बशीर कहां है?' वह कहते हैं, 'सास ले, इतनी दूर से आया है। बशीरा तो तेरे साथ ही चला गया था।' वह मुझे 'सवेरा' के नये अंक दे देते हैं।

मैं उनसे अब्दुल रहमान चुगताई साहब का पता पूछता हू, चौधरी साहब, 'इकबाल और चुगताई' वाली बहुमूल्य किताब देकर कहते हैं, 'यह तेरे वास्ते छोड़ गए हैं।'

मैं नजर मुहम्मद राशिद साहब को मिलने की तमन्ना जाहिर करता हूं तो वह हसते-हंसते रोने लगते हैं। फिर मैं कर्नाल शॉप पर जाकर मण्टो साहब से मिलने की तमन्ना जाहिर करता हू कि उनपर इतने दिनों से कोई कहानी न लिखने का मुकद्दमा क्यों नहीं चला? सब मुझे घूरने लग पड़ते हैं। कासमी साहब कहते हैं, 'मियां, तुम चुप कर जाओ. नहीं तो यहां फिर छुरी-कटारी चलने लग पड़ेंगी। अगर बोलना है तो यहां से चले जाओ···'

मैं वापस लौट रहा हूं—मैंने गोल बाग से गुलाब के फूल तोड़ लिए। किताबों का बण्डल मेरे पास है। वापस जिस सड़क पर लौट रहा हू, वह लोहे की बन गई है। लोहे के संतरियों ने बाग की सीमा पर लोहे के फाटक बन्द कर दिए हैं। और मुझे कहते हैं, 'किताबें यहां रख दो। फूलों को कहां ले जा रहे हो? तुम्हारा पासपोर्ट कहां है? तुम चोर हो, मुजरिम हो!'

मेरे पास उनकी किसी भी बात का जवाब नहीं। 'तुम वापस नहीं जा सकते!' कोई कड़कता है, मैं नोमैनलैण्ड पर बैठा हूं···"

"उस लड़की ने मेरी ओर पीठ कर ली और मेरी मां से कहा, 'यह बच्चा जो मेरे अन्दर पल रहा है, इसका बाप आपका लड़का है।' पर पापाजी कड़के, 'यह सरासर इल्जाम है।'

एक औरत ने पहली बार इल्जाम लगाया। मैं मुल्जिम न होते हुए भी मुनकिर न हो सका। 'अगर यह कहती है तो मैं इल्जाम कबूल करता हू।'

राणो (मेरी बीवी) चुप हो गई। वह चाहती थी कि मैं उसके सपने को वरल से बचाने के लिए ही मुनकिर हो जाऊं। राणो का दिल टूट गया। यह

गुनाह मैंने किया और उस रात मैं आंखों जैसे पवित्र मन्दिर में गुनाह वख्शवाने के लिए चला गया।

जब दरबार में पहुंचा तो आरती हो रही थी। मैंने अपने पैरों की ओर देखा तो लगा कि मैं तो जूतों समेत इस मन्दिर में आ गया हूं। सब लोगों के पैर नंगे थे और मैंने बूट पहने हुए थे।

काश ! यह सपना हो, सच न हो। काश ! कोई मेरे पैरों की ओर न देखे। पता नहीं मैं किसके आगे गिड़गिड़ा रहा हूं ! जूते उतारकर मैं उन्हें कपड़ों में छुपाने के बारे में सोच रहा हूं। अब पूरी भीड़ की नजरें मेरे पैरों पर आ पड़ती हैं। मैं क्या कर सकता हूं। मैं भाग भी नहीं सकता। इन पैरों को काटकर फेंक भी नहीं सकता। पूरा मजमा मेरा दुश्मन है। और मैं बेबस हूं···

बताओ यारो, तुम क्या करते ? बताओ यारो, इस तरह के सपने क्यों आते हैं ? और बार-बार क्यों आते हैं ? ये सपने नहीं टारसोज के बेसिर-पैर के ठोस बुत···

जिनको डायरी में लिखना पड़ता है, जिसमें तिथि और वार वर्जित हैं···

हरकिशनलाल

श्री हरकिशनलाल पंजाब के वह चित्रकार हैं, जिनके चित्रों की नुमाइशें भारत से बाहर भी कोई पन्द्रह देशों में हो चुकी हैं। उनके इस वक्त दो स्टूडियो हैं; एक बम्बई मे, एक लदन मे। उनके साथ उनके सपनों की बात कर रही थी कि अचानक उनके मुह मे निकला, "पता नही क्यो पर सपने मे मैं सीढिया उतरने से बड़ा घबराता हू।" मैंने हसकर कहा, "शायद आप अपने अचेतन मन को देखने में घबराते हों—सीढ़ियां उतरकर, जो मकान के निचले हिस्से होते हैं, वे जुग के कथनानुसार अचेतन मन की गहराइयां होती हैं—अंधियारी···" वह भी हंस दिए, कहने लगे, "शायद···" और उन्होंने जो अपने सपने सुनाए, वे ये हैं :

"एक रात सपने में फैज़ अहमद फैज़ मुझे अपनी गज़ल सुनाते रहे, मैं हर शेर पर दाद देता रहा। जागा तो वही शेर मेरे होंठो पर था, जिसकी मैं उस वक्त दाद दे रहा था। बिलकुल याद था, पर उसी वक्त फिर नींद आ गई, और जब जागा, वह शेर भूल चुका था। पर दूसरी रात फिर सपने में फैज़ साहब ने एक गज़ल सुनाई, कहा, 'हरकिशन! एक और गज़ल लिखी है, 'वह सुन।' फिर तीसरी रात भी सपने में उन्होंने एक गीत सुनाया। मैं उन्हे कह रहा हूं, 'इस गीत को रात में कंपोज़ करना चाहिए।' उस रात सपने मे मैं उस मकान में बैठा हुआ था, जहा कभी फिरोजपुर में मैं छोटी उम्र में रहा था। देखा—वहा, उस मकान में एक गाने वाली भी बैठी हुई है, पास ही तबला और सारंगी भी हैं। तबले वाला जब तबला शुरू करता है तो बोल का सम नहीं पकड़

सकता।

वोल सोलह मात्रा के हैं, पर अजीव नये ताल में तर्ज़ वनी है जो न तीन ताल में न एक ताल में। मैं तवले वाले को ताल समझाता हूं, फ़ैज़ साहव भी ताल के वोल वता-वताकर समझा रहे हैं—अजीव सपना था। मुझे आज तक पता नहीं लगा कि फ़ैज़ साहव लगातार तीन रातें मेरे सपने में आकर मुझे कैसे अपनी गज़लें और गीत सुनाते रहे।"

"मैं खुद भी कई वार सपने में नज़्म लिखता हूं। उनींदी-सी हालत में कई वार पंक्तियां कागज़ पर उतार लेता हूं, पर जव पूरी तरह जागता हूं, देखता हूं, जो कागज़ पर लिखा था, वह पूरा पढ़ा नहीं जा रहा है। कोई-कोई लफ्ज पढ़ा भी जाता है, पर पूरा कुछ भी पढ़ा नहीं जाता। कागज़ पर अजीव लकीरों का नक्शा-सा वना हुआ होता है।"

"मेरे वाप की मौत आज से २४ वरस पहले हुई थी। और मां की आज से तीन वरस पहले। अपने वाप का पूरे इक्कीस वरस तक मुझे कभी सपना नहीं आया था। पर जव से मां की मौत हुई है, अव दोनों के वहुत सपने आते हैं। सिर्फ उनके नहीं, वल्कि उनसे भी पहली पीढ़ी वालों के। पुराने घरों के भी। दूर-पास के रिश्तेदारों के भी। कई वे लोग जो सुने-सुनाए थे, अव सपनों में रिश्तेदार लगते हैं।"

"कई वार सपने में मुझे सारे लोग अलग-अलग रंगों के दिखाई देते हैं। यह नहीं कि उन्होंने रंगदार कपड़े पहने हुए हैं, उनके वदन भी जैसे अलग-अलग रंगों के वने हुए हों···।"

"मुझे तीर्थों के वड़े सपने आते हैं। उन तीर्थों के जिन्हें मैंने जिन्दगी में देखा नहीं। कभी-कभी एक तीर्थ कई वार दिखता है। वम्बई तीन वत्ती के पास कोई नदी नहीं, पर सपने में मुझे वहां एक नदी दिखती है। और उसके किनारे पर वना हुआ एक छोटा-सा घर होता है, दो मंज़िला, साधारण-सा, पर मुझे पता होता है कि वह मकान मेरा है। मकान में दाखिल होता हूं, देखता हूं, यहां मैं

अपना सामान छोड़ गया था, वह कहां गया ? वहां अब मेरा छोड़ा हुआ सामान नहीं मिलता…"

"मुझे सपने में अक्सर एक मन्दिर दिखता है, जिसके चारों ओर अजन्ता और एलोरा की मूर्तियों की तरह मूर्तियां दिखती हैं। उनके बीचोंबीच आंगन में एक तालाब है, जिसमें मैं अक्सर नहाने के लिए जाता हूं।"

"एक बार सपना आया कि मैं नहाकर मन्दिर के पिछवाड़े वाली राह से पिछले जंगल में चला गया। वहां शीशे के बक्सों में सुनहरी मछलियां हैं। जंगल के पेड़-पौधे बड़े ही खूबसूरत हैं। मैं मछलियां देख रहा था कि मेरे पास राजा का वज़ीर आया। सपने में मुझे काल का पता नहीं, पर कोई ऐसा काल है जब किसी राजा का राज है। वह वज़ीर मुझसे आकर कहने लगा कि मैं तुझे ही ढूंढ रहा था। देख ! राजा को एक बहिश्त बनवाना है जिसकी सारी रचना तुझे बनाकर देनी है। बहिश्त का नक्शा भी। मैं कहता हूं, 'पर वह नक्शा अपनी मर्जी से बनाऊंगा।' वह मान जाता है और मुझे साथ लेकर राजा के महल की ओर चल पड़ता है। आगे जाकर पूरा महल तो नहीं दिखता पर उसका दरवाज़ा दिखता है। वह कहता है, 'तू यहां बाहर खड़ा रह। मैं राजा को सूचना दे आऊं।' मैं जब वहां अकेला खड़ा हूं, देखता हूं, राजा महल के अन्दर से निकलता है, उस दरवाज़े में से, जहां शीशे की लड़ियों का पर्दा लगा हुआ है। राजा के गले में लम्बा चोगा है। बनारसी रेशम का। पर देखता हूं—आसपास से कई लोग सामने आ जाते हैं, और राजा को सलाम करके उनके इर्द-गिर्द खड़े हो जाते हैं। वज़ीर भी वहां है। मुझे राजा के पास ले जाना चाहता है, पर राजा के गिर्द एक भीड़ इकट्ठी हो गई है। और राजा उन लोगों समेत फिर महल के अन्दर चला जाता है। मैं जब फिर अकेला खड़ा हो जाता हूं तो एक बड़ी खूबसूरत, बुत सरीखी तराशी हुई लड़की मेरे पास आती है, कहती है, *'मैं राजा की नर्तकी हूं। राजा को फुर्सत नहीं, चल मैं तुझे अपना नाच दिखाऊं।'* मैं उसके साथ चल पड़ता हूं, और देखता हूं, एक तरफ कोई मेला-सा लगा हुआ है, जहां लोग कहीं कव्वाली गा रहे हैं, कहीं नाच कर रहे हैं। पर देखता हूं, एक जगह हुक्कों में अफीम पी रहे लोग बेसुध-से पड़े हुए हैं। पास जाकर देखता हूं—वे लकड़ी के शिकंजे में

हुए हैं और उनके वदन भिचे हुए हैं। यही डरावने दृश्य वढ़ जाते हैं...
वता हूं—यह तो दोजख है, मुझे किसी तरह यहां से दौड़ जाना चाहिए।
हां से दौड़ता हूं तो आगे जाकर देखता हूं—एक जगह वड़े-वड़े मन्दिर वने
ए हैं—कोई वौद्ध मन्दिर, कोई सीरियन, कोई इजिप्शियन तरह का, कोई
यूनानी, कोई हिन्दू मन्दिर। मैं हैरान-सा खड़ा ही रह जाता हूं। सोचता हूं—
यह वहिश्त है। साथ ही सोचता हूं—मेरे लिए किस मन्दिर में हिफाजत
होगी ? एक मन्दिर ऊंची जगह पर वना दिखता है, जिसके थड़े को हाथ
डालकर मैं ऊपर चढ़ना चाहता हूं, पर देखता हूं—मन्दिर के पहरे पर खड़े लोग
मेरी ओर भाले लेकर दौड़ते हैं, मुझे मारने के लिए। मैं वहां से दौड़ पड़ता हूं।
देखता हूं, वह नर्तकी भी मेरे पीछे-पीछे आ रही है। फिर एक जगह एक पग-
डण्डी नीचे की ओर जाती दिखती है, मुझे लगता है—इस पगडण्डी पर जाने से
मैं वच जाऊंगा। जव उस पगडण्डी पर दौड़ता हूं—तो नीचे सामने हरी घास
का मैदान दिखता है। वहां एक नदी भी दिखती है। जहां कुछ औरतें कपड़े धो
रही हैं। पास घास पर कुछ वच्चे खेल रहे हैं। मुझे सुख की सांस आती है कि
अव मैं वच गया हूं। वह नर्तकी भी मेरे पीछे-पीछे आ रही है, मेरे पास आ
जाती है और मैं उसको भी कहता हूं—'अव हम वच गए हैं।' और देखता हूं—
राजा की उस नर्तकी के गले में पहने वे रेशमी कीमती कपड़े सादी सूती धो...
में वदल गए हैं..."

...अपने चार वरस

वणजारा वेदी

श्री वणजारा वेदी पंजाबी के वह् विद्वान हैं, जिन्होंने अपनी जिन्दगी लोक-साहित्य के लेखे लगा दी है। वह १९५० से बराबर यह खोज का काम कर रहे हैं। लोककथाओं के बारे में उनके पांच संग्रह छप चुके हैं। एक आठ सौ पृष्ठों का 'पंजाब का लोकसाहित्य' उनका ग्रन्थ बडा कीमती है। अब 'लोकधारा विश्वकोश' दस जिल्दों में छप रहा है। लोकोक्तियों और मुहावरों के विषय पर भी उनकी एक पुस्तक है 'लोक आखदे हन' और उनके शब्दों में "जब मुझे कोई लोकोक्ति मिलती है, ऐसा लगता है जैसे अपना ही खोया हुआ बच्चा मिल गया है।" सपनों के बारे में हमारी सभ्यता का दृष्टिकोण क्या रहा है, इस पक्ष से उनकी खोज के कुछ हिस्से मैं उनके छप रहे विश्वकोश में से लेकर यहां दर्ज कर रही हूं।

"सपनों के बारे में बड़े रोचक विश्वास, मान्यताएं और वहम-भ्रम प्रचलित हैं। आदि मानव सपनों को आत्मा के भ्रमण से जोड़ता रहा है। प्राचीन धारणा यह रही है कि प्राणी जब रात को सोता है, तो उसकी आत्मा देह को त्यागकर भ्रमण करने को चली जाती है। और जिन-जिन जगहों पर आत्मा घूमती है, जो-जो दृश्य देखती है, वही सपने का रूप धारते हैं। इसलिए सोए हुए मनुष्य को झटके से जगाना ठीक नहीं समझा जाता, कि हो सकता है, उसकी आत्मा बहुत दूर गई हुई हो, जहां से जल्दी लौटना मुश्किल हो, इसलिए बेरुहे प्राणी को जागने से संकट की हालत पैदा हो सकती है। इस संकल्प-संबन्धी कई कथा-कहानियां मिलती हैं। यह संकल्प बृहदारण्यक उपनिषद् में भी मिलता है।

वणजारा वेदी

मानों की धारणा है कि अच्छे सपने अल्ला की तरफ से आते हैं, और
की तरफ से, इसलिए अच्छे सपने एक तरह से भविष्यवाणी होते हैं,
शैतान की धमकियां। जब किसीको बुरा सपना आए तो उसे जागते
वार अपने वायें कंधे के ऊपर से थूकना चाहिए और शैतान से रक्षा के
ल्लाह से तीन बार पनाह मांगनी चाहिए। और जिस करवट लेटे रहने
ह सपना आया हो, वह करवट वदलकर दूसरी करवट से लेटना चाहिए।
न में मूरत यूसुफ आयत (३६, ३७, १०२) में सपनों के फल का ज़िक्र
ता है।

सिक्ख धर्म के अनुसार सपने मन की माया होते हैं। इनका शुभ या अशुभ
ल कोई नहीं।

प्राचीन हिन्दू धर्मग्रन्थों में सपनों के शुभ-अशुभ फल का ज़िक्र मिलता है। ऋग्वेद और अथर्ववेद की कई ऋचाओं में बुरे सपने की तुलना दुख-दारिद्र्य और संकट से की गई है। और उससे मुक्त होने के उपाय भी बताए गए हैं। अथर्ववेद के २३वें परिशिष्ट में कुछ ऐसी ऋचाओं की सूची है जो बुरे सपनों के मन्द प्रभाव को नष्ट करने के लिए पढ़नी जरूरी हैं। यह भी कि किसीको बुरा सपना आया हो तो उसे व्रत रखना चाहिए, और खीर बनाकर ब्राह्मणों को खिलानी चाहिए। गृह्यसूत्र में भी बुरे सपनों के प्रभाव से बचने के लिए कई उपाय बताए गए हैं, जिनमें बकरों की बलि का भी विधान है।

ऋग्वेद (८, ४७, १५) के अनुसार सपने में गहना गढ़वाना या फूलों का हार गूंथना शुभ है। उपनिषद के अनुसार यज्ञ के दिनों में यदि यज्ञ करवाने वाले को रात को सपने में औरत दिखे तो यज्ञ सफल होता है, और कामना पूरी होती है।

आरण्यक उपनिषद् के अनुसार जो कोई इंसान सपने में कोई काले दां
वाला आदमी देखे, या सुअर उसके ऊपर हमला करे, या बन्दर उसके ऊपर उछ
कर आए या तूफान-अंधेरी उसे उड़ाकर ले जाए या वह सोना निगल जाए
लाल फूलों की माला पहने, तो सपने मौत के संकेत होते हैं।

पंजाबी लोगों की सपनों के बारे में अलग तरह की मान्यताएं हैं।
है कि सवेरे का सपना हमेशा सच्चा होता है। रात के पहले पहर का
निरर्थक होता है। दूसरे या तीसरे पहर में देखा सपना उलटा होता है

। अपने-अपने चार वरस

दोपहर के समय देखे सपने का कोई शुभ या अशुभ फल नही होता।

यह भी कि अच्छा सपना किसीको सुनाना उचित नहीं, क्योंकि उसका फल दूसरे से बांटा जाता है। इसी तरह बुरा सपना किसीसे सुनना उचित नहीं, क्योंकि उसका अशुभ फल सुनने वाले को भी मिल जाएगा…

सपने मे हरी या सफेद रंग की वस्तु देखनी, या पानी का प्रवाह देखना शुभ होता है, पर काली या लाल रंग की चीज या आग जलती देखना अशुभ समझा जाता है।

सपने में साप दिखाई दे तो इसका भाव है कि कोई मन्नत मानकर पूरी नही की गई। सपने मे नाच-रंग देखना भी किसी दुख-संकट की चेतावनी समझी जाती है। इसके विपरीत गम, दुःख और मुसीबतें देखना शुभ है, जिसका भाव यह लिया जाता है कि दुःख भोग लिए गए।

सपने में तांबे या लोहे के सिक्के मिलें तो वे भी अशुभ होते हैं, किसी आने वाली बीमारी के सूचक।

सपने में अगर मरे हुए बड़े-बूढ़ों से मिलाप हो जाए, तो पुण्य-पाठ कराया जाता है। सोचा जाता है कि उनकी गति नहीं हुई, उनकी रूहें भटक रही हैं। हां, अगर मरा हुआ प्राणी कुछ दे जाए तो शुभ समझा जाता है, धन-दौलत की बढ़ोतरी। पर अगर वह सपने मे कुछ ले जाए तो घर मे धन का घाटा हो जाएगा। इसी प्रकार अगर सपने मे कोई जीवित व्यक्ति मर जाए तो उसकी उम्र लम्बी समझी जाती है, पर अगर सपने में ब्याह देखे तो वह किसी संकट की सूचना मानी जाती है।

सपने मे हाथी देखने का भाव है कि गणेश देवता किसी कारण से रुष्ट है, सो दिन में उसकी पूजा की जाती है, उसे खुश करने के लिए।

सपने मे पानी देखना शुभ है, पर यदि नदी पार करनी पडे तो किसी मुश्किल में से गुजरने का संकेत। हां, नदी पार करके दूसरे किनारे पर लग जाए तो किसी मुश्किल से या लम्बी बीमारी से छुटकारे का संकेत समझा जाता है।

सपने में कोई अपने-आपको ऊंट, गधे या बैल पर सवार देखे तो वह उसकी जल्दी मौत का संकेत समझा जाता है। इसी तरह अगर वह कोई फल तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़े तो यह भी मौत की सूचना होती है। क्योंकि मरे हुए इंसान के फूल (हड्डियां) नदी प्रवाह से पहले कहीं पेड़ पर टांगकर रखे जाते हैं।

वणजारा

सपने में कच्चे मांस की वोटियां देखना किसी आने वाले भारी रोग की सूचक होती हैं। सूखा तालाव देखना भी किसी आने वाली भूख-नंग का संकेत होता है। पहाड़ की चोटी पर चढ़ना तरक्की का सूचक, और चोटी से गिरना असफलता का सूचक। अगर कोई सपने में अपने-आपको जेलखाने में देखे तो वह उच्च अधिकारी वनता है। अगर फांसी लगता हुआ देखे तो जल्दी वादशाह वन जाता है।

सपने में कोई सड़क दिखाई दे तो वह लम्वे सफर की सूचक होती है, पर राह में राख, हड्डियां या कांटे देखना शुभ नहीं है।

सपनों द्वारा कई दवे खज़ानों की सूचना भी मिलती है। सिक्ख गुरुओं से सम्वन्धित कई वावड़ियां थीं जो मीर मन्नु के ज़माने में वन्द कर दी गई थीं। उनका पता सपनों के द्वारा मिला वताया जाता है। महाराज रणजीतसिंह ने सपने में देखा था कि कोई आदमी कह रहा था, 'सुनहरी मस्जिद के पास वाज़ार के नीचे गुरु की वावड़ी दवी हुई है।' सुवह महाराजा ने धरती खुदवाई तो नीचे वावड़ी वरामद हुई। इसी तरह अम्वाला शहर की वावड़ी का भी सपने के द्वारा पता लगा था, जहां देश के वंटवारे के वाद गुरुद्वारा वनाया गया है।

यह भी माना जाता है कि रात दूध पीकर सोने से वुरे सपने आते हैं, और इसके विपरीत फल खाकर सोने से अच्छे सपने आते है।"

प्राचीन मान्यताओं को हवाले के तौर पर रखने के लिए मैंने श्री वणजारा वेदी की मदद से ये कुछ सफे इस किताव में दर्ज किए हैं, पर इनके सोच-विचार में पड़ना इस किताव का ध्येय नहीं। हां, श्री वणजारा वेदी की वरसों की खोज के समय लोककथाओं और लोकधारणाओं का उनके अपने सपनों पर क्या असर हुआ, इसमें मेरी दिलचस्पी ज़रूर है; और उन्होंने अपने निजी सपने ये वताए हैं:

"यह सपना मेरी चढ़ती जवानी का है। तव मेरी मानसिक स्थिति आम जवानों से अलग थी। घर के गुर सिक्खी प्रभाव के नीचे नियम से पाठ करना ज़रूरी था, जिस कारण मुझमें धार्मिक रुचियां वड़ी वलवान थीं, पर उन्हीं दिनों में मैंने कुछ ऐसी पुस्तकें पढ़ीं जिनके कारण मेरे मन में निवृत्ति-भावना वड़ी प्रवल हो गई। उन्हीं दिनों में नवे पहल्ले के श्लोक दिन में कई वार पढ़ता जिनसे

निवृत्ति और त्याग की भावनाएं इतनी गहन हो गईं कि मैंने अपने मन मे निवृत्ति मार्ग को अपनाने का दृढ निश्चय कर लिया। इसी स्थिति में यह सपना आया :

मैंने एक बडी रमणीय घाटी देखी जहा एक झरने के किनारे तरह-तरह के खूबसूरत फूल उग रहे थे। पास ही एक बड़ा प्यारा पर अद्भुत-सा पेड़ देखा। मैं यह अन्तर न जान सका कि यह पेड़ था कि कोई युवती, पर कुछ पलों के बाद ही मुझे पेड की जगह एक बेल सरीखी युवती झूमती दिखाई दी। लगा था कि वह युवती अभी झरने मे से स्नान करके निकली थी। वह अर्द्धनग्न और आधी ढकी हरे और लाल रग के कपड़े पहने जैसे मुझे अपनी ओर बुला रही हो। पर जैसे उसके रूप-जवानी का मेरे ऊपर कोई असर नहीं हो रहा था। मैं उसको देखकर चौंका और पीछे लौटकर सूखे और बंजर पहाड़ो की तरफ दौड़ पड़ा। वह युवती भी मेरे पीछे दौड़ी। उसने बड़े मधुर स्वर में मेरा नाम लेकर बुलाया। मीठी ध्वनि फिज़ा मे गूज गई। मैंने लौटकर देखा। मेरे पैर मन-मन के भारी हो गए और मैं एक भी कदम आगे न उठा सका। उसने मेरी तरफ मुस्कराकर देखा। मैं उसकी तरफ दौडा। पता नहीं, उसने मुझे बाहो मे भर लिया या मैंने, पता नही उसने मेरे होंठ चूमे या मैंने उसके, पर मेरे सारे रोम-रोम मे झनझनाहट-सी छिड़ गई। मुझे ऐसे लगा कि जैसे उस चुम्बन की मिठास मिश्री की तरह समूचे शरीर मे घुल गई हो। अचानक मेरी आख खुल गई। यह उसके होंठों का स्पर्श एक अलौकिक रस बनकर मेरी स्मृति मे कई बरस रचा रहा। यह सपना था जिसने अगले दिन मैंने निवृत्ति-मार्ग को अपनाने का दृढ निश्चय त्याग दिया था।"

"एक सपना परियों के बारे में है और उन दिनों का है जब मैं अपनी किताब के लिए लोककहानियां एकत्र कर रहा था और अनेक परियां मेरे जीवन में लालसा बनकर फैली हुई थीं। तब मैं जागते हुए भी परियों के सपने लेता था, सोते हुए तो स्वाभाविक ही था। सोता आदमी तो जीता ही सपनों की दुनिया मे है। सब परियों में अनारपरी सबसे प्यारी और हसीन लगी होने के कारण मेरे दिल-दिमाग मे छाई हुई थी। अनारपरी को मैंने कई बार दिन में जागते हुए रात के सपनों मे आलिंगन किया था। जैसे कि कथा प्रचलित है कि अनारपरी शहज़ादे की मौत के बाद अदृश्य हो गई थी, कि वह किसी अनार मे समा गई

व भी वह किसी अनार में ही वसती है।
छ इसी तरह की मन:स्थिति थी जिसमें यह सपना देखा। मैं जगह-जगह
ा उस अनार को ढूंढ़ रहा हूं जिसमें अनारपरी शहज़ादे की मौत के वाद
ुपी थी। अचानक एक नदी के किनारे एक वड़ा रमणीय वाग दिखाई दिया
में वेशुमार अनार के पेड़ थे। मैंने नदी की तरफ देखा कि एक परी जैसी
न युवती स्नान कर रही थी। किनारे पर उसके कपड़े पड़े हुए थे। मैं कपड़े
ाने के लिए दौड़ा, पर वह युवती विजली की तेज़ी से नदी में से निकलकर
पड़े लपेटती एक अनार के पेड़ में अलोप हो गई। मैं समझ गया कि यही अनार
ाहज़ादी है। मैं उस पेड़ की तरफ वढ़ा जहां अनारपरी अलोप हुई थी। वहां एक
वड़ा सारा अनार लगा देखा। मैं जल्दी से अनार तोड़कर घर की ओर दौड़ा और
छत के ऊपर चढ़कर अनार काटा, पर वीच में से छन-छन करती लाल-हरे कपड़े
पहने कोई परी न निकली। कोठे के ऊपर मेरी नानीजी भी आ गई। मैंने उनको
कहा कि अनार शहज़ादी वाला अनार तो मैं तोड़ लाया हूं, पर इसमें से परी नहीं
निकली। केवल झांवला-सा पड़ा है। नानीजी कहने लगीं, 'अरे मूर्ख, तू व्याहा
हुआ है। व्याहे हुए मर्द का हाथ लगते ही अनारां अलोप हो जाती है।' मैं
शर्मिदा-सा हो गया। अचानक मेरी आंख खुल गई…

सुवह जागकर जव सपना मेरी स्मृति में उभरा तो मैंने अपनी नानीजी को
सपना सुनाया। उन्होंने सचमुच वताया कि अनारां शहज़ादी व्याहे वर के हाथ
नहीं आती। मुझे वड़ा दु:ख हुआ। काश, मैं कुंवारा होता तो कम से कम सप
में तो अनारां को गले लगा सकता…"

"लोग कहते हैं, सुवह-सवेरे का सपना हमेशा सच होता है। शायद इस
कि सुवह के समय की निर्मल-निश्छल फिज़ा में सपनों का सृजनहार भी पा
नहीं रचना चाहता। एक सपना जो दिन में सच हुआ उसका वर्णन करता हूं
मैं एक मासिक पत्रिका का सम्पादक था। एक तो पैसे वहुत थोड़े मिलते थे
काम वहुत ज़्यादा करना पड़ता था, जिस कारण मैं नौकरी छोड़ना तो
था, पर कोई और काम-धन्धा न होने के कारण मैं छोड़ने में असमर्थ था
कई वार इस्तीफा दे चुका था। जव तक इस्तीफे की मियाद पूरी होती
मुझे न कोई धंधा मिलता और न ही अखवार वालों को मुझ-सा सस्त

अपने-अपने चार वरस

हाथ लगता। फलस्वरूप इस्तीफा अपने-आप रद्द हो जाता। किसीको कुछ कहने-सुनने की जरूरत ही न पड़ती। इसी मानसिक स्थिति मे एक सपना आया :

मैं क्या देखता हूं कि मैं जब घर से दफ्तर जा रहा था तो थोड़ी दूर पीछे तेज़ कदमो से दफ्तर का एक क्लर्क, जो हमारे मकान की दूसरी मंज़िल में ही रहता था, आ रहा है। मैं रुक गया। हम दोनों अपनी-अपनी ख़स्ता आर्थिक हालत के बारे में बातें करते दफ्तर पहुंच। पर आज दफ्तर बन्द था। हम दोनों दफ्तर के बाहर खड़े बातें करते रहे। पहले दफ्तर नौ बजे खुल जाता था, पर आज पौने ग्यारह बजे मालिक का लड़का साइकिल पर आया और बिना हमारी ओर देखे, आंख चुराता दफ्तर का दरवाज़ा खोलकर अन्दर चला गया। उसके पीछे-पीछे हम दोनो अन्दर आए। मालिक के लड़के ने मेरी ओर देखा। उसका गला भर आया और आंखो मे आंसू उतर आए। वह कहने लगा, 'बेदी साहब ! मैं बड़े दुखी और भरे हुए दिल से कह रहा हूं कि बाऊजी ने आपका इस्तीफा मंज़ूर कर लिया है, और आज से नये सम्पादक का प्रबन्ध हो गया है। इसीलिए आज से आपकी छुट्टी !' मैंने कहा, 'कोई डर नहीं। तुम मेरा हिसाब चुकता कर दो।' फिर एकदम मेरी आंख खुल गई।

मैंने इस सपने को एक साधारण सपना न समझा और जब मैं सुबह घर से दफ्तर जाने लगा तो अपनी पत्नी को यह सपना विस्तार से सुनाते हुए कहा कि आज मेरी नौकरी का अन्तिम दिन है। जब मैं घर से निकलकर सडक पर आया तो सपने ने अपना रंग दिखाना शुरू कर दिया। मेरे पीछे-पीछे तेज़ कदम रखता हमारे दफ्तर का क्लर्क आ रहा है। मैंने मिलते ही उसको अपना सपना सुनाया। हम बातें करते हुए दफ्तर पहुंचे तो दफ्तर का दरवाज़ा बन्द था। यह क्या बात, आज इतनी देर तक दफ्तर क्यों नहीं खुला ? सपना तो ऐन-बैन सच्चा हो रहा है। पूरे पौने ग्यारह बजे मालिक का बड़ा लड़का साइकिल पर सवार वहां आया, और उसने ही दरवाज़ा खोला। वह मुझसे आंखें चुरा रहा था। मैं जब उसके पीछे-पीछे कमरे में दाखिल हुआ तो मेरी ओर देखते ही उसकी आंखें भर आईं। फिर वह भर्राए हुए गले से कुछ कहने ही लगा था कि बात उसके गले में अटक गई। आखिर उसने कह दिया, 'हमने आज नया सम्पादक रख लिया। आपका इस्तीफा मंज़ूर है।' "

आबिद सुरती

गुजरात के मशहूर कलाकार आविद सुरती के हाथों में लेखक का कलम
है, चित्रकार का ब्रुश भी। आविद सुरती के कहने के मुताविक "मेरे सपने
भी भी रोमाण्टिक नहीं होते" पर अपने जिन सपनों की उन्होंने वात की है,
नमें पेड़ की डाल-डाल पर पत्तियों की जगह उंगलियां उग आती हैं, कोई
ींटी सिर पर वड़ी-सी चट्टान लिए चल रही है और कोई लड़की चांदी की
लेट में अपना ही सिर रखे हुए छुरी-कांटे से खा रही है। उनकी कलम से :

"पता नहीं यह मेरी खुशकिस्मती है या वदकिस्मती, मेरे सपने कभी भी रोमाण्टिक नहीं रहे। सपनों में मैंने न कभी गोरी-गोरी वर्फ जैसी परियां देखी हैं, न कभी इंद्रधनुषी फूलों से भरी वादियां। न कभी मैंने अपने-आपको लोक-प्रियता के एवरेस्ट पर खड़ा पाया है, न कभी महापुरुषों के चोले में। न कभी किसी 'विश्व सौंदर्य स्पर्धा-विजेता' सुंदरी के साथ संसर्ग करते हुए मैंने अपने-आपको सपने में देखा है, न कभी सपनों में मैंने अपने-आपको मुगले-आज़म की तरह हरम में खड़ा पाया है।

वचपन में मुझे लॉलीपॉप वहुत ही पसंद थे। और मेरे परिवार की स्थिति ऐसी थी कि महीने में एकाध लॉलीपॉप खरीदना भी मेरे लिए मुश्किल था। कम से कम यह लॉलीपॉप का ख्वाव तो भगवान मुझे भेंट दे सकते थे! नहीं दिया। वल्कि एक भी ऐसा सपना मुझे दिखाई नहीं पड़ा जिसे देखकर मेरा जी वहल जाए।

अलवत्ता, ऐसा कई वार हुआ है कि किसी कहानी का अंत न मिलने पर

सोचते-सोचते मेरी आखें मुद जाती हैं और सपने में वह कहानी आगे बढ़कर अंत तक पहुंच जाती है। शायद इसे हम हमारे अजाग्रत् मानस का कार्य कह सकते हैं। तब प्रश्न यह उठता है कि सपने क्या हैं? क्या वे भी अजाग्रत् मानस के प्रतिबिम्ब नहीं? शायद। पर यह शोध का विषय है, मेरा नहीं। हां, एक बात तय है। करीब-करीब मेरे सारे ख्वाब एब्सर्ड और ऊटपटांग रहे हैं।

सपने में मैंने देखा है—आदमी के सिर वाला एक कुत्ता, जो जब भी भौंकता था उसके मुंह से एक छिपकली कूदकर दौड़ जाती थी।

मैंने देखा है—एक समदर को, जिसकी सतह पर से दसों सिर वाला रावण सिर के बल फिसलता हुआ क्षितिज-रेखा की ओर चला जा रहा था।

मैंने देखा है—एक नग्न युवती को, जो किसी फाइव स्टार होटल के डाइनिंग हॉल में छुरी-चम्मच लिए बैठी थी और उसके सामने चांदी की प्लेट में उसका अपना ही सिर पड़ा था।

मैंने देखा है—एक पेड़ को, जिसकी डाल-डाल पर पत्तियों की जगह उंगलियां उग आई थीं।

पर एक ख्वाब, जो मैं बचपन से लेकर आज तक कई बार देख चुका हूं, वह कुछ और ही है। न जाने क्यों, जागने से पहले मैं एक चींटी को देखता हूं जो अपने सिर पर एक बड़ी-सी चट्टान लिए हुए आगे बढ़ती चली जा रही हो। पहले यह सपना मैं साल में दो-चार बार देखता था। अब दो-चार साल में एक बार देख लेता हूं। जागने पर कई दिनों तक सोचता रहता हूं। यह चींटी कब तक मेरे सपनों में चट्टान उठाए भटकती रहेगी?"

इन्दु जैन

न्दु जैन मन की तीक्ष्णता को बौद्धिक स्तर पर जीने और लिखने वाली न्दी लेखिका हैं जिनके कई सपनों और कई रचनाओं के बीच कोई लकीर सकना उनके लिए भी संभव नहीं रह जाता—मन-मस्तिष्क पिघलकर ान हो जाते हैं। इन्दु जैन की अपनी लेखनी द्वारा सपनों का वर्णन इस ार है :

"सपने कोई 'यों ही-सी' चीज़ नहीं होते। वे बहुत निजी हैं, मेरे अपने । ऐसे हैं जिन्हें कभी-कभी मैं खुद से कहने में कतरा जाती हूं। वैसे भी, मेरा वश्वास है कि तीव्र अनुभव का क्षण सच्चा और खरा क्षण होता है। वह ज़िंदगी में नहीं घटा—सपने में आया—इस वजह से वह कम असल नहीं हो जाता। फर्क ही क्या है दोनों में ? इतना ही न कि ज़िंदगी में गुज़रे क्षणों का प्रमाण कोई दूसरा भी दे सकता है—'हां, ऐसा तेरे साथ हुआ था।' लेकिन मेरे अनुभव की 'तीव्रता' का प्रमाण कोई दूसरा तो नहीं दे सकता न ! जब उसकी गवाह सिर्फ मैं खुद हूं तो फिर सपने और यथार्थ में अन्तर ही कहां रह गया ? इसके अलावा, जो भोगा गया वह ज़िंदगी में आया और चला गया। इसी तरह सपने में उसका आना और बीत जाना है। क्या जीवन में हम उसे पकड़कर बैठा लेते हैं—उसका निरन्तर आस्वाद करते रहते हैं ? जब ऐसा नहीं तो दोनों की अनुभूति एक-से स्तर की, एक-से महत्त्व की ही तो कहलाएगी !

मेरे सपने, रातों में देखे हुए सपने, बार-बार मेरी कविताओं में मूर्त हुए हैं। कुछ में मैं अकेली हूं और कुछ में मेरे साथी हैं—शरीके-ख्वाब 'ऐसे जो मेरे

सपनों का हिस्सा होने का सपना तक नहीं देख सकते। किसी कविता में डूब जाना, उसके रचयिता को सपने में निकटस्थ कर लेना और इस पद्धति से, एक तरह से, उस कवि को अपने सिस्टम से निकाल देना—यह एक प्रक्रिया है। इस तरह के सपनों ने कविताएं लिखवाई हैं :

रात एक नया गीत गया था
किसी ने खुद आकर बजाया था
पिघली हुई आग-सा राग या पिलाया था।

और वह साज़दा
देह के कसे तार छेड़ लौट आया जो
चौंक कर पूछ रहा—
'अरे, क्या तेरे किसी सपने में
मैं कभी आया था ?'

तुम भी मेरे एक सपने हो
खुले डस्टबिन में
बासी फूलों के लहकते झोंके
नींबू में घुआंती गंध
सांस की किसी खास बेसाख कड़ी की तरह
मेरे अपने हो
तुम भी सपने हो मेरे एक।

या फिर वह कविता :

कल रात मुझे एक सपना आया
जिसमें तुम थे
सपने में हम तुमसे मिले
हम यानी मैं और मेरी छोटी बहन।

बरसों पहले शमशेर बहादुर सिंह से पहली मुलाकात हुई थी और वह मेरी एक कविता में एक सपना पढ़कर चौंके थे। चौंककर उन्होंने मुझे पहली बार कवि के रूप देखा था। उस कविता में एक सही सपना ज्यों का त्यों उतारा गया था :

मुझे एक सपना दिखता है
अक्सर सोते-जगते
और अचानक छोटे-मोटे सपने आकर मिल जाते हैं
एक अकेले अलग खड़े सपने में…"

सपना-१

"एक घना जंगल-सा है। कलसाई हुई हरी बेल-लतरें चढ़ी हुई हैं पेड़ों पर। गहरा झुरमुट है। मालूम नहीं, मैं उसमें कैसे पहुंच गई हूं। रास्ता नहीं है। फिर भी मैं बढ़ रही हूं। नीचे काली मिट्टी, ऊपर छतनार ऊदे पेड़। आसमान नहीं दिखता। अचानक दिखता है एक मकान का हिस्सा—उन्हीं बेलों से छता। बीच-बीच में सफेद दीवार झलकती है। उसमें एक खिड़की है। खिड़की में कोई बैठा है—ठोढ़ी हथेली पर टिकाए। उसका मुख मेरी ओर नहीं है। उसने अपनी लम्बी गोरी कोहनी चौखट पर टिका रखी है। कोहनी तक की बांह, घूमे हुए मुख की कोर और गर्दन—बस, यही दिख रहा है। वह स्त्री है या पुरुष ? मैं अकुला रही हूं, मना रही हूं—'वह पुरुष ही हो, पुरुष ही हो…मुझे दिख जाए उसका मुख, दिख जाए…। मैं देखना चाहती हूं—जरूर-जरूर…' लेकिन उस व्यक्ति की दुनिया खिड़की के पार, कमरे के अन्दर है। वह मुझसे बेखबर है। मैं जानती हूं—मुख मेरी ओर नहीं घूमेगा। मैं बढ़ रही हूं, बढ़ रही हूं, लेकि सफेद कोहनी, सफेद दीवार, खुली खिड़की—सब ज्यों के त्यों उतनी ही दू रहते हैं, उतनी ही दूर रहेंगे…।

बहुत बेचैन सपना :
और एक पत्तों में डूबा
छायादार जंगली रस्ता
तांबे के पत्तों का लम्बा सूना
हवा नहीं जो चर्-मर् बोले

तभी अचानक
व्यू मास्टर के नये चित्र-सा
चौड़ा नीला सागर खुलता

जिसमें जाकर दूर
कटी धरती-सा वह रस्ता मिल जाता।
उसके पतले, मटमैले, खतरीले कोने पर
कुछ बच्चे
बाल सुनहरी, हवा मिले
बस खड़े हुए हैं…।"

सपना-२

"मैं मर गई हू। पता नहीं कैसे, क्यों और कहा ? बहुत-से लोग एक-दूसरे से बातें कर रहे हैं। मेरी ममी—जैसी तो सोलह-सत्रह साल की उम्र में, अपनी फोटो में लगा करती थी—रो रही हैं। मालूम नहीं कौन अनजान लोग उन्हें चुप कराते हैं—'अब क्या हो सकता है ? अब क्या हो सकता है ?' ममी गुस्से से तेजस्विनी लगती हुई कहती हैं, 'हो क्यों नहीं सकता ? वो मरी नहीं है। मैं उसे अभी आवाज देती हूं।' वे मुझे मेरे घर के नाम से पुकारती हैं 'शोन… शोन…' मैं जानती हू कि मैं मर गई हूं और अब उनके कितने भी पुकारने पर नहीं आ पाऊंगी। 'ममी, मैं अब नहीं आऊंगी'—मैं सोचती हूं और इस दर्द से, छटपटाहट से कि वो बुलाती रहेगी और मैं आ न सकूंगी, मेरा दम घुटने लगता है। मैं अपनी मौत की निश्चितता, अंतिमता से अभिभूत होकर रोने लगती हूं—हिचकियां बंध जाती हैं। अवसाद इतना गहरा हो जाता है कि मैं घबराकर उठ जाती हूं…"

सपना-३

"एक ऊंचा पहाड़। उसपर जाती हुई एक सड़क, एक मोड़। मुड़ते ही दायें एक पेड़ दिखाई देता है। नीचे बायें एक मकान है, जिसके छज्जे में सुर्ख जेरेनियम उग रहे हैं। तभी कोई कहता है, कोई बड़ी मामूली-सी बात।…बिलकुल ऐसा ही मोड़ मैं पहले भी कभी मुड़ी हूं, यही पेड़, यही फूलों वाला मकान वहां भी था और इसी क्षण किसीने यही बात कही थी। मैं फिर यात्रा शुरू करती हूं। वही स्थिर दृश्य फिर से, फिर से वही शब्द ! अजब नौस्टेल्जिया होता है। यह दृश्य मैंने कब, कहां देखा है ? यह किसने कहा था ? यह क्षण बिलकुल ऐसे

सपना-४

"विवाह का घर है। बारिश-का सा सुरमई दिन। जिस घर में विवाह का इन्तज़ाम है वह न सजा हुआ है, न सुरुचिसम्पन्न है। ट्रंक बेतरतीब रखे हुए हैं, उनपर कपड़ों का अम्बार है, कुछ चारपाइयों पर लोग अस्तव्यस्त बैठे हैं। रिश्तेदार इकट्ठे हैं लेकिन कोई उत्साह, उछाह नहीं दिखता। 'कुछ होना है, इस-लिए किया जा रहा है' जैसा भाव। बीच सपने में आभास हुआ जैसे मैं किसी दूसरे के विवाह में शामिल होने नहीं आई हूं—मेरा ही विवाह है, मेरे अपने पति के साथ ही। वे किसी काम से अन्दर आते हैं तो मैं पूछती हूं, 'क्या हम हनीमून पर जाएंगे ?' वे काम में व्यस्त हैं। उन्हें सवाल पसन्द नहीं आता। कहते हैं, 'हनीमून पर क्या जाएंगे! कोई पहली बार तो शादी हो नहीं रही हमारी। अच्छा नहीं लगेगा कि सब लोग आए हुए हैं और हम बड़ा शौक दिखाएं, चले जाएं।' मैं चुप रह जाती हूं। दिमाग के किसी कोने में बच्चों की प्रतिक्रिया भी लगाम का काम कर रही है। हम दोनों के विवाह में एक ही बात रेखांकित है कि प्रणय उद्दाम है।"

सपना-५

"एक स्कूटर-नुमा टू-सीटर हवाई जहाज है। मैं उसमें बैठी हूं, 'ये' चला रहे हैं और हम उड़ रहे हैं। मुझे न कोई आश्चर्य है, न रोमांच। मेरे हाथों में किताबें हैं, कुछ लिफाफों में खरीदारी है और गोद में कुछ कपड़े भी हैं। मैं सब चीजें संभाल रही हूं। बार-बार लगता है, कुछ गिर न जाए! सबसे ज्यादा परेशानी यह है कि मेरी चप्पल बायें पैर से खिसक गई है और जान पड़ता है—अब गिरी, अब गिरी। अधिक हिली-डुली या झुकी तो खुद न गिर पड़ूं या सामान न जा पड़े! मेरे पीछे छोटी बिटिया भी सो रही है—मुझसे टिकी हुई। मैं इनसे कहती हूं, 'जरा रोक लो, मैं चप्पल पहन लूं।' ये हवाई जहाज कुछ धीमा करते हैं और फिर बिना पूछे चला देते हैं। चप्पल वैसी ही ढीली है।

ममी से बात कर रही हूं। पूछती हैं, 'कहां थीं ?' मैं बताती हूं, 'तुम्हें नहीं

मालूम ? इन्होंने हवाई जहाज बनाया है। पिछले दो दिन से हम उसीमें घूम रहे हैं।' मेरी सहेली जमुना का फोन आता है। वह समाचार सुनकर मेरे भाई का नाम लेती है। 'अशोक ने मदद की होगी !' मैं कुछ गर्व से कहती हूं, 'नहीं, वह तो बरसों से जापान में है। इन्होंने खुद ही बनाया है। मुझे भी कुछ पता नहीं। ये ही करते रहते हैं कुछ न कुछ...' "

"एक जमाना था जब आसमान में उड़ने के सपने बहुत देखती थी। खड़े-खड़े जरा पैर धरती से उठाए और उड़ चली। बहुत सुखद अनुभूति होती थी। लेकिन शायद जिंदगी ने किसी हद तक पंख काट दिए और वो सपने आने बंद हो गए, पैर जमीन पर टिक गए। इसी तरह साइकिल चलाने के सपने भी खूब देखे। साइकिल पर बैठी, किसीने जरा-सा धक्का दिया और मैं लहराती हुई साइकिल पर बैलेंस करती चल दी—चली जा रही हूं। चारों तरफ से हवा मुझे छू रही है। मैं विचित्र उन्मुक्तता और आह्लाद से भर उठी हूं। मजे की बात यह कि जिंदगी में एक बार साइकिल सीखते समय जो गिरी तो फिर [कभी चलाना न सीख पाई ! सीधे चार पैरों वाली कार ही चलाने की हिम्मत की।

इसी तरह पहले नृत्य करने के सपने भी बहुत देखती थी। मुझे याद है, किसीने एक बढ़िया नये रेकॉर्ड का जिक्र किया जिसमें अन्य वाद्यों के साथ बांसुरी मुख्य बताई। यह भी कि उसपर नृत्य बहुत अच्छा हो सकता है। उस सारी रात मैं सपने में नाचती रही और एक रेकॉर्ड बजता रहा—गजब का ! यह भी याद है कि जब एक दिन वह धुन सचमुच सुनी तो बहुत निराशा हुई, क्योंकि वह मेरे सपने की धुन के पासंग भी न थी।

कुछ भी हो। सपने राहत देते हैं। कितनी ही बार जो जीवन में संभव नहीं है, जिस सामीप्य-सुख की तरफ हाथ बढ़ाना निषिद्ध है वह मुझे सपने में मिला है और अपूर्व तृप्ति से भर गया है। शायद जिंदगी में उसे पाना चाहती तो इतनी कालिख, इतनी फिजूल स्थितियां झेलनी पड़ती कि उनकी राख में अंगारा बिलकुल ही दब जाता। और यह भी संभव है कि वह अनुभव न उत्कट होता, न अपूर्व !

इन सपनों ने मेरा मानस-परिवार किस तरह निर्मित किया है, कितनी समृद्धि दी है—मैं ही जानती हूं। अकुलाने वाले, घबराने वाले सपने भी मन

ाली कोनों को भरते ही हैं। वे मेरे ज़िंदा होने का दस्तावेज़ हैं। जिस दिन ने आने बंद हो जाएंगे, उस दिन मैं एकसतही हो जाऊंगी, मर जाऊंगी। मैं हती ही रहूं :

पैरों के नीचे घास-सा
फिर भी सरसराता रहा मेरा सफा।"

गुरबख्शसिंह

पंजाबी लेखक सरदार गुरबख्शसिंहजी बड़े कोमल और खूबसूरत ख्यालों के मालिक हुए हैं। उनकी जिंदगी और रचना सपनों के साथ लबालब भरी हुई थी। अपनी आत्मकथा में जहां उन्होंने जागती आंखों वाले सपनो का भरपूर जिक्र किया है, कुछ रात के सपनों का भी जिक्र किया है। उनकी छोटी उम्र के दो सपने ये हैं :

एक उम्र के पन्द्रहवें बरस का है। जब वह नौवीं जमात मे थे : "तब शीशे को मैंने अपना साथी चुन लिया। जब घर वालों को मेरे इस साथी का पता लग गया तो मैंने इसे बाबाजी के डेस्क में छुपा दिया। जब कोई पास न होता, मैं उसे निकाल लेता। मुझे अपना रंग अच्छा लगने लगा। पीलापन जाता रहा, कालिख कम हो गई···जमात में भी उतना नाचीज़ नही रह गया था। मैंने एक बहुत सुन्दर और अमीर लड़के की दोस्ती जीत ली थी। कश्मीरी पण्डितों का यह भानजा श्यामसुन्दर था, नौवीं जमात मे कहीं बाहर से आकर दाखिल हुआ था। कद में मुझसे भी छोटा, पर बड़ा ही प्यारा था। उस श्यामसुन्दर के सपने मुझे आते थे। मैं उसके पास बैठना चाहता था और मैं उसकी चीजों को आंख बचाकर चूम लेता था···"

दूसरे सपने का जिक्र उस 'मखनी' से सम्बन्धित है जिसने लेखक की सोलह बरस की उम्र मे उसकी कल्पना को अनोखे रंग से रंग दिया था। वह कुछ बड़ी उम्र की थी, ब्याही हुई, पर लेखक के मन मे जादू छा गया था। उसी मखनी

क तपती दोपहर में लेखक को अपनी गगरी में से ठण्डा पानी
र जिसका ज़िक्र लेखक के लफ्ज़ों में इस तरह है : "मैं अन्दर की ओर दौड़ा कि
ई गिलास या कटोरा ढूंढ़ लाऊं मखनी की गगरी में से पानी डलवाने के लिए।
ठे बर्तनों का अनमंजा ढेर सामने दिखा। कहीं उसे बहुत देर खड़ा न होना
ड़े, मैं एक जूठा गिलास ही उठा लाया। डुबडुब करती गगरी का मुंह निवाके
उसने मेरा जूठा गिलास सुच्चे पानी से भर दिया···साकी की सुराही की कुल-
कुल को मखनी की गगरी की डुबडुब ने मात दे दी। जूठा गिलास मेरा बिल्लौरी
पैमाना बन गया···" और उस घटना के सात बरस बाद जब लेखक ईरान
में था, वहां के एक रात के सपने का ज़िक्र है : "खूब नींद आई। और सपना
आया—गगरी ने कुलकुल किया, मेरी दुनिया सुनहरी हो गई। पर उसी समय
गगरी उसके प्यारे हाथों से गिर गई, टुकड़े फर्श पर छनक गए, मेरा दरवाज़ा
खड़क रहा था।"

गुरबख्शसिंहजी की आत्मकथा से दूसरे हिस्से में कुछ सपने विस्तार से
हैं :

"यह मेरा सपना है तो किसी लम्बे सपने का अन्त, पर लम्बा सपना मुझे
याद नहीं रहता—अन्तला भाग जैसे मेरी आंखों में भरा रहता है। कितनी दे
तक जागते हुए भी मुझपर खुमारी छाई रहती है। लगता है नींद अब खुलने वा
है। यकायक सिनेमा की फिलम की तरह दृश्य पर दृश्य उभरते आते हैं···
आसमान का एक टुकड़ा जगमग करने लग पड़ता है, यह जगमगाहट अ
किस्म की होती है—जागते हुए मैंने इसके सरीखा कभी कुछ नहीं देखा
तारा बड़ा पास और हीरे-लाल जैसी चमक वाला दिखता है। नीचे घर
एक पिघले हुए नील की झील दिखाई पड़ती है। झील के एक तरफ ह
पर्वत ऊंचा हो जाता है। झील में छोटे-छोटे टापू निकल पड़ते हैं जि
बादबानी किश्तियां तैर रही हैं, बड़े ही प्यारे लोग किसी एक टापू से च
किसी दूसरे पर पहुंचते हैं। झील के दायें-बायें एकदम महल खड़े होते
अनुपम छवि वाले—उनकी खिड़कियों में रेशमी पर्दे उड़ते और
सरीखे मुंह झमझमाते हैं। सपने की फिलम तेज़ चाल से घूमती
स्वर्गीय दुनिया का अक्स डालती जाती है, सामने पर्वत, बीच में वि
दो ओर महल-दुमहले, और चौथी ओर हरी मखमल जैसा स

इसके ऊपर एक जगह मैं खुश, खिला-सा खड़ा हुआ, चारों ओर ऊपर-नीचे, उंगलियां मुंह में डाले देख रहा हूं—पर एक कचोट-सी मेरे अन्दर होती है, कि दृश्य खत्म होने वाला है—हूक-सी उठती है कि एक पल और, एक पल और। तभी एक तरफ हवा में सरसराहट होती है। उस ओर आंखें उठाता हूं···यह कोई उड़ता आ रहा है! मेरी धरती जैसी कोई सूरत है।···नजदीक आ रही है, प्यारी-प्यारी लग रही है। कोई महक उसकी तरफ से आ रही है—बेमिसाल महक, ओह, वह बहुत नजदीक आ गई। कितना सादा इसका पहरन है—एक सफेद ढीला कुरता, नीचे ढीला सफेद पजामा, लहराते केश, हाय खूबसूरत अन्दाज में तैरते। ऐसी सादा और संक्षेप पोशाक मैंने कभी किसी स्त्री की नहीं सोची थी। सिर्फ दो सफेद कपडे, संगमरमरी नंगे पैर, जैसे निर्मल पानी में तैरते दिख रहे थे। कोई ज़ेवर नहीं, कोई बिन्दी नहीं, कोई तिलक नहीं, मांग में कोई सिन्दूर नहीं···पर हर अंग में से किसी मीठे फुहारे में से उडते चांदी-कणों की तरह, कोई जादू-भरी मुस्कान झर रही है। उड़ती-तैरती वह मेरे पास से फर-फरा जाती है, और जमीन से इतनी ही ऊंची होती है कि उसके पैर मेरे होंठों के बराबर पर होते। बारी-बारी से मैं उसके पैरों को चूमता हू और वह उड जाती है, पर एक छोटा-सा चक्कर काटकर वह फिर मेरे पास से गुजरने लगती है। जब वह मेरे पास आती है, उसकी रफ्तार धीमी हो जाती है। इस बार उसकी कमर मेरे होंठों की ऊंचाई तक होती है। इस कमर को मैं चुम्बन देता हूं। उसकी मुस्कान मेरे कुछ नजदीक होने के कारण सुनहरी चमक फेंकती है—मेरा अन्तस् अकुला उठता है, और मैं चाहता हू कि, अगले चक्कर में वह एक पल के लिए मेरी धरती को छूती जाए···और सोचता हूं—इस बार उसका कौन-सा अंग मैं चूमूं···और मुंह उठा-उठाकर उसकी उड़ान की ओर ताकता हूं—पर उसने अपना मुंह पर्वत की ओर कर लिया है, मेरे अन्दर दृश्य खत्म हो जाने की खुतमुती मचती है।···अगले पल मैं अपने बिस्तरे पर करवटें ले रहा होता हूं—समूचा बदन कांप रहा होता है।"

और गुरबख्शसिंह जी लिखते हैं: "कई अपने सपने मैं बढाकर लिख देता हूं, सुना देता हूं, पर मेरा यह सपना है जिसको ठीक तरह कहने के लिए मेरे पास लफ्ज़ नहीं हैं—किसी कोश में भी नहीं। यह सपना मुझे साल में दो-तीन बार

…। पर इसका रूप हमेशा नया होता है। कभी महलों … उतने ही प्यारे पशु और पंछी … ती वाले दरिया और जंगल होते हैं—उतने ही प्यारे पशु और पंछी हैं…एक औरत ज़रूर होती है और इस सपने के बाद उगती सुबह को मैं महसूस करता हूं। उसे मैं अपना 'लाल दिन' कहता हूं। कभी चिन्ता-भरे डरावने सपने भी आते हैं। जैसे यह मीठा सपना मुझे कई बार आता है, … तरह तीन और किस्मों के सपने भी भेस बदलकर मुझे दिखते हैं :

एक है उड़ान का सपना। जिस तरह हाथ-पांव मारकर, हम पानी में … रते हैं, उसी तरह हाथ-पैर मारकर खड़ा-खड़ा मैं आसमान में उड़ता हूं। बहुत ऊंचा नहीं चढ़ सकता, ज़रा-सा हाथ मारने बन्द करूं तो नीचे-नीचे आता जाता हूं, पर फिर ज़ोर लगाकर ऊपर चढ़ जाता हूं। कभी-कभी तो बड़ी साफ और दिलचस्प उड़ान भी भर लेता हूं—पर कभी-कभी ही।"

"दूसरा सपना मेरा यह होता है कि नीचे मेरे विरोधी मुझे पकड़ने के लिए बांहें फैलाए शोर मचा रहे हैं, पर मैं ज़ोर लगाकर उनको पकड़ से ऊंचा चढ़ जाता हूं। कई-कई बार उनको लगता है, 'हाथ आया, कि हाथ आया', मुझे कई बार लगता है कि 'अब, बस, अब पकड़ा गया', पर हर बार ज़रा-सा फर्क रह जाता है—मैं उनके हाथ कभी आता ही नहीं—और जब हाथ-पांव थककर …र हो जाते हैं, तब मेरी नींद टूट जाती है।"

"तीसरा सपना बरस में एक-आध बार आता है। यह बड़ा ही डरावना होत… है। कोई मुझे मारने के लिए आ रहा है—मदद के लिए आवाज़ें देता हूं, आवा… मुंह से नहीं निकलती। फिर खतरा सर पर पहुंचता है—अपनी तरफ से … मचाता हूं, इतने में कोई मेरे पास सोया हुआ मुझे झिंझोड़कर जगा देता … क्योंकि मेरे सोए हुए के मुंह से कोई डरी-डरी बेशब्द आवाज़ ज़रूर निकल… होती है।"

गुरबख्शसिंहजी अपने इन सपनों का कुछ विश्लेषण भी करते हैं : … उड़ान वाला सपना मनुष्य की सीमा लांघने वाली जन्मजात प्रवृत्ति है, … सपने के अर्थ भी मुश्किल नहीं, पर तीसरा डरावना सपना कितने सम…

समझ न सका। सामने कोई बड़ा खतरा न होते भी यह सपना मुझे आ ही जाता है। मेरी निडरता मे काफी बढोत्तरी हो चुकी है, पर यह डरावना सपना अभी भी उतना ही डरावना आता है। ऐसा सपना मेरी माताजी को भी आया करता था, तो हम उन्हे जगाकर सावधान कर दिया करते थे। अब सपनों पर वैज्ञानिक-साहित्य पढ़ने के कारण मुझे पता लगा है कि यह सपना मेरी माताजी का है। गर्भ-समय मा-बेटे का सम्बन्ध अटूट होता है, तब से माताजी का कोई बड़ा डर मेरे अचेतन मन का हिस्सा बन गया है—तब से जब मेरी-उनकी तन्तु-प्रणाली एक ही होती थी।"

पद्मा सचदेव

पद्मा सचदेव डोगरी भाषा की लोकप्रिय शायरा हैं। पद्मा सचदेव की नी : "अमृताजी ! कई चीज़ें हमसे बहुत परे होती हैं। हर सोच और समझ से परे। आपको एक बात बताऊं। जो पहले सिर्फ अपनी दोस्त लता बताई थी, लता मंगेशकर को, आज आपको बता रही हूं। कोई दस वर्ष ने लगे हैं, वर्ष में दो बार ऐसा होता है कि मैं सोई हुई उठती हूं और देखती हूं कि उंगलियों के पपोटों पर मेहंदी लगी होती है। केवल मुझे नहीं, सबको लगी दिखाई देती है और तीन-चार दिन दिखाई देती रहती है। वे निशान फिर धीरे-धीरे उसी तरह मिटते हैं जैसे मेहंदी का रंग उतरता है। शुरू-शुरू में मैंने सोचा, पपोटों पर हल्दी-सी लगी रह गई है, पर नहीं दूसरी बार देखा वो मेहंदी पपोटों पर नहीं हथेली के बीच में लगी हुई थी। यह सब कुछ मेरी समझ से परे है। मैंने सिर्फ घबराकर इसके बारे में कविता लिखी है जो आपको सुनाती हूं :

मुझे पता है—दूर कहीं कंडी के इलाके में एक कुआं है
और जिसके पानी को पीकर कभी प्यास नहीं लगती
मुझे पता है—यह कोई आत्मा है बड़ी प्यासी, मुझे प्यार करती है
पर मैं उसके छोड़े हुए चिह्न कभी-कभी
उंगलियों के पपोटों पर देखती हूं...
कभी मैं सोई हुई जागती...
और किसी-किसी उंगली के पपोटों पर मेहंदी के निशान दिखते

वह रुह कहां है कंडी इलाके के कुएं की तरह
उसे भी ढूंढना मुश्किल है
पर उस चीज को याद करूं तो आंखें भर आती हैं
उस कुएं की तरह—जो कंडी इलाके में है···

अमृताजी ! पता नही मन के ये रेगिस्तान कैसे होते हैं···एक और सपना आता था, १९५८ की बात है। देखती थी—बहुत गहरा और काला पानी होता था, इतना काला कि देखते ही डर लगता था, और उस पानी में दो मीनार बने होते थे, एक पर मैं खडी होती दूसरे पर वह, जिसको मैं प्यार करती थी। बीच में फासला होता था। मैं बांहें फैलाती थी, उसे आवाज़ देती थी, 'हाथ इधर बढा, मेरी ओर', पर वह हाथ कभी भी मेरे तक नही पहुंच सकता था···और नीचे बहुत गहरा और काला पानी होता था। फिर १९७५ में मैं अपने खाविन्द के साथ जिनेवा गई—और वहां जिनेवा की झील का पानी, झील का नहीं, झील से टूटा हुआ, दूर पत्थरों में बह रहा, उसी तरह काला और भयानक था। मैं वहां खडी थी, लगा, यहां मैं अठारह बरस पहले भी खड़ी थी और मैं खौफ से चीख ही पडी। अपने खाविन्द से बिलखकर कहा, 'मुझे यहां से दूर ले जाओ, जिनेवा में कही और ले जाओ···' लगा, यह पानी मेरे पीछे पड़ा हुआ है···और इसने अठारह बरसों से मेरी परछाईं को अपने सीने में पकड़ा हुआ है···देखो, अमृताजी ! आपको यह सब कुछ सुनाना ऐसे है जैसे मैं अपने वजूद के टांके खोलकर दिखा रही होऊं···नही, मैं इसके बारे में कभी कोई नज़्म नहीं लिख सकी···नज़्म लिखने का भी हौसला नहीं पड़ता···

मनमोहनसिंह

शायद इंसान किसी जगह अपनी हर सोच से वड़ा होता है, अस्तित्व की जानी-पहचानी हकीकत से कुछ अधिक। पता नहीं, पर अंग्रेज़ी के शायर और कहानीकार मनमोहनसिंहजी का एक सपना ऐसी ही किसी दिव्य शक्ति की ओर संकेत करता लगता है :

"मैं भी वाकी इंसानों की तरह सपने देखता हूं। कई वार सोचता हूं कि इंसान खुशकिस्मत हैं या वदकिस्मत, क्योंकि वे सपने देखते हैं। वाल्ट ह्विटमैन ने कहा था कि जानवरों और इंसानों में यही फर्क है कि रात को इंसान अपने अस्तित्व या अपने सपनों के अस्तित्व के वारे में वहुत कुछ देख सकता है।

मेरे सपनों के खज़ाने या विरासत में से मुझे कई सपने याद हैं। पर यह चुनाव करना मुश्किल है कि कौन-सा सपना एक अमिट याद है। मैंने शेरों और चीतों के सपने देखे हैं, क्योंकि मुझे शिकार खेलने का शौक है। मैं मछलियां पकड़ने का सपना भी देखता हूं, क्योंकि मुझे इसकी भी सनक है। मैं हवाई जहाज़ के सपने देखता हूं, क्योंकि मैंने इनमें वहुत सफर किया है। और मैं सुन्दर व्यक्तियों के सपने देखता हूं, क्योंकि मैं हविसों की पवित्रता में यकीन रखता हूं।

मुझे अनुभव है कि मनोविज्ञानशास्त्रियों को यह वताकर अपने पर मज़ाक उड़ाने का मौका दिया है, क्योंकि उनके अनुसार चीतों और मछलियों के सपने आने का सम्वन्ध केवल सेक्स से ही है। कितनी वदकिस्मती है कि यदि जागते हुए सपने लेते हैं तो शेखचिल्ली कहलवाते हैं, और अंधेरी रात

की ओट में जब उन दुनिया के सपने लेते हैं जो दुनिया नहीं है तो उसमें कई तरह के मनोवैज्ञानिक जुर्मों के दोषी बन जाते हैं। चाहे गधे का सपना हो या फरिश्ते का, हमारे सपने भी मनोवैज्ञानिक अदालत के कटघरे में दोषी बनाकर खड़े कर दिए जाते हैं।

हां, मेरा एक ऐसा सपना है जो मेरी जिन्दगी के सारे सपनों में से महत्व-पूर्ण है। चाहे यह एक सपना नहीं दो सपने हैं, पर वे दो सपने एक जैसे थे। उनका रंग, उनका ढंग, उनकी शक्ल एक जैसी थी। ऐसा लगता था कि जैसे उनको किसी अमानवीय शक्ति ने एक-सा गढा हो। मैं समझता था कि किसी मूर्तिकार के लिए या किसी चित्रकार के लिए दो एक जैसी मूर्तियां और दो एक जैसे चित्र बनाने बड़े मुश्किल हैं, पर सपनों को बनाने वाला चित्रकार एक अमानवीय शक्ति रखता है,इसी शक्ति ने ये दो सपने एक जैसे गढ़े थे।

हैरानी की बात तो यह है कि दोनों बार ये सपने सुबह तीन बजे के करीब मैंने देखे। मुझे यह इसलिए याद है कि दोनों बार मैंने घडी देख ली थी। इस सपने में कुछ कंपकंपी लाने वाली शक्ति थी। इस तरह लगता था कि एकदम मुझे जाग आ गई हो और मैं सपने की इंतजार में मग्न हो गया होऊं।

यह सपना एक रोशनी के रूप में आया। वह रोशनी भी इतनी अजीब कि इससे पहले कि मैं सपने का वर्णन करूं या इसके अर्थ के बारे में सोचू, पहले उस रोशनी के बारे में बताता हूं जो कि एक अजीब रोशनी थी। उन सब रोशनियों से अलग जो कि चांद, सूरज, आग, बिजली या जुगनू में से निकलती है।

यह रोशनी रोशनदान में से आई। चाहे मैंने बाद में सोचा कि ऐसी रोशनी तो शायद दीवार फाड़कर भी आ सकती थी। इस तरह जैसे पानी मलमल के कपड़े में से निकल जाता है। यह रोशनी पहले बहुत ही छोटे-से सितारे की तरह थी। उन आकाशों के सितारों जितना, या रेत के एक छोटे-से कण जैसा जो धूप में चमक रहा हो। फिर रोशनी का यह कण फट गया जिस तरह कि एक शान्त मणि बम फटा हो, और उस बम के टुकड़े किरणों की तरह फैल गए।

"जब यह कण फटा तो कमरे में रोशनी हो गई। यह रोशनी एक अ

रोशनी नहीं थी। इस रोशनी को रोशनी के नियमों से नापा या देखा नहीं जा सकता था। यह रोशनी एक मरमरी तरह की रोशनी थी, न ही सुबह की, न ही दोपहर की, न ही शाम की। इस रोशनी से ऐसे लगता था जैसे हाथी के कई मन दांतों को पीसकर किसीने हवा में बिखेर दिया हो और उस पिसे हुए हाथी दांत पर कोई अलौकिक झलक पड़ रही हो।

मैं समझता था कि रोशनी को देखने की शक्ति द्वारा ही जाना जा सकता है। पर उस दिन मैंने वह रोशनी देखी जिसे छुआ जा सकता था। वह रोशनी भी एक कंपकंपी-सी लाने वाली घटना थी। इसलिए मैं सोचता हूं कि वह रोशनी पिसे हुए हाथीदांत के पाउडर की बनी हुई थी। इस रोशनी ने कुछ शक्लों का रूप धारण कर लिया। मैं सुन्न पड़ा देख रहा था। रोशनी की शक्लें एक आकाश के बैले डांस वालों की तरह झूम रही थीं और फिर उन शक्लों में से एक आवाज़ निकली।

मैंने अपने कानों से यह आवाज़ नहीं सुनी। यह आवाज़ इस तरह लग रही थी जैसे मेरे जिस्म में ढल गई हो और भीतर से ही एक नगाड़े की तरह गूंज रही हो—वह नगाड़ा जो किसी गांव के छोटे-से गुरुद्वारे में पड़ा टिब्बों के पार गए हुए लोगों को वापस बुला रहा हो।

इस आवाज़ की ज़बान भी एक अजीब ज़बान थी। मुझे वह लफ्ज़ याद नहीं पर ऐसा लगता था कि वह एक ऐसी आवाज़ हो जिसे अभी शब्द न मिले हों। शायद यह सपना भी एक ऐसा निजी सपना था कि इसकी आवाज़ को आम ज़बान में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। इस आवाज़ के शब्द डिक्शनरी या शब्दकोष की जंजीरों के कैदी नहीं।

पर फिर भी इस आवाज़ को मैं समझ सका। यह आम आवाज़ जैसी सुनने की शक्ति से नापी नहीं जा सकती, ऐसे लगता था जिस तरह कि इस आवाज़ को देखा भी जा सकता हो। यह आवाज़ उस रोशनी से ज़्यादा प्रकाश कर रही थी जिस रोशनी को छुआ जा सकता था। यह आवाज़ उस तरह की आवाज़ थी जिसको देखा और पकड़ा भी जा सकता था।

इसका क्या मन्तव्य था? ऐसा लगता था जैसे उस हाथीदांत के पाउडर की शक्लें मुझे अपने-आपमें से खींचकर ले जा रही थीं। उन शक्लों की उंगलियां जो मेरी ओर उठाई जा रही थीं, उन शक्लों के हाथों से भी लम्बी थीं। मैं

महसूस कर रहा था, जिस तरह एक निज़ाम के कटघरे में मैं खड़ा होऊं और यह रोशनी उस कटघरे से मुझे आज़ाद करवा रही थी।

थोड़े समय बाद ऐसा लगा जैसे वह रोशनी कमरे में से अपने-आपको लपेट रही हो, जैसे स्टेज पर काम कर रहे कलाकार उस ड्रामे के अन्तिम सीन के बाद वहां का सामान उठाकर ले जा रहे हों। इससे पहले कि रोशनी बिलकुल ही धीमी हो जाए, मैंने अपने-आपमें कुछ जिन्दगी का अहसास समझा और थोड़ी-सी करवट ली। सिरहाने पड़ी एक किताब को उठाया। चाहे ऐसे लगता था कि वह किताब कोई बहुत ही भारी पत्थर हो। मैंने इस किताब को उलटा-पलटा और उसका वरका देखा और उस वरके की पहली पंक्ति पढ़ी।

रोशनी सांप की तरह बल खाती हुई रोशनदान में से वापस जा रही थी और दूर एक सितारे में फिर समा गई। वह सितारा जो दरिया के किनारे पर पड़ा रेत के एक कण की तरह चमक रहा था। कमरे में फिर घुप्प अंधेरा हो गया। मैंने अपने-आपमें किताब का वरका और उसकी पंक्ति को फिर याद किया और दोहराया ताकि वह मुझे याद रहे।

सुबह हुई और सूरज निकला। मैंने सिरहाने की ओर से किताब को उठाया। मुझे वरका याद था। मैंने किताब उस वरके पर खोली और उस वरके की पहली पंक्ति पढ़ी। और फिर एक सुन्न-सी मेरे समूचे बदन में आ गई और किताब मेरे हाथ में से गिर पड़ी। इस वरके की पहली पंक्ति वही थी जिसे मैंने रात उस रोशनी में पढ़ा था।"

चन्दन नेगी

चंदन नेगी पंजाबी की एक उभरती कहानीकार है, जिसने सपनों में कई र भविष्य के इशारे देखे हैं—यहां तक कि जब उसने जागते हाथों में कलम हीं पकड़ी थी, कलम का वर सपने में पाया।

"कई बार मैं सपने में ऐसी जगहों पर घूमती हूं, ऐसे स्थान देखती हूं जो वास्तव में कई-कई सालों बाद जब देखती हूं तो सपने का नज़ारा सामने आ जाता है। कई बार ऐसे चेहरे देखती हूं जो पहचाने नहीं जाते और जिनसे मिलन पता नहीं कितनी देर बाद होता है। जीवन में घटित होने वाली घटनाएं कई बार मुझे सपने में ही सचेत कर जाती हैं। और कभी-कभी किसी अजीब-से सपने से डर भी लगने लगता है।

मैं चार-पांच सालों की थी जब मेरी मां मुझे और दो छोटे भाइयों को छोड़कर चल बसी थी। मां के बाद दोनों भाई भी चल बसे और फिर पापाजी भी। पन्द्रह नवम्बर, १९७७ की रात क्या देखती हूं कि पापाजी मर गए हैं, उनकी लाश सफेद कफन में लिपटी तख्तपोश पर पड़ी है। पैरों के पास मां बैठी हैं। उन्होंने सफेद धोती पहन रखी है। बाल खुले हैं। मेरे दोनों भाई जीत और कालू भी पास खड़े हुए हैं। मैं चुपचाप सबको देखती हूं, रोती भी नहीं। हैरान होती हूं, दोनों भाई तो छोटे थे। (जीत नौ साल का और कालू छः महीने क मरा था) अब दोनों ही भर जवान हैं। मैं सोचती हूं, इतने बड़े कैसे हो ग जैसे उम्र के अनुसार होना चाहिए था? मैं थोड़ी दूर पर खड़ी पूछती हूं, 'ज मुझे तो याद ही नहीं तू बड़ा कब हो गया? तू अपनी कविता न मांगना।

कागज तो पेशावर ही रह गया है।' (छ: साल का जीत कविता लिखता था।)

वह हंसा, 'मैंने तुमसे अपनी कविता तो नहीं मांगी ?"

'यह तेरे साथ और कौन लड़का है ?"

'तुमने नहीं पहचाना ? काल्‌ू है—अब बड़ा हो गया है। तुम दूर क्यों खड़ी हो ?, क्या सोच रही हो ?'

मैं हैरान, फिर भी एकटक देखे जाती हूं।

'चंदन, छ: सालों से पापाजी भी हमारे पास ही आ गए हैं, हम सब इकट्ठे रहते हैं—मैं, काल्‌ू, मां और पापाजी। पापाजी सो रहे हैं, तुम कब आओगी ? तुम ही अलग रह गई हो। तुम भी आ जाओ, यहां सब इकट्ठे रहेंगे। जगाऊं पापाजी को ? चंदन आई है ?' उसने पेशावरी लहजे में ही पूछा।

'नहीं...' मैं लौटने लगती हूं। सोचती हूं पापाजी तो मर गए हैं।

'कहां चली जा रही हो ? आओ न चंदन, सब इकट्ठे रहें...कब आओगी ?'

मैं जीत का मुंह देख रही थी, वैसे ही भोले-गोरे-कोमल-कोमल चेहरे, पर दाढ़ी भी आ गई थी। उसने मेरी बांह झिंझोड़ी, 'कब आओगी...कब आओगी ?'

मेरी आंख खुल गई। दिल की धड़कन की आवाज सुन रही थी और फिर...?

सत्रह नवम्बर को मेरा एक्सीडेण्ट हो गया। बुरी तरह घायल हुई। बाजू की हड्डी टूटी, पर उन सबके पास पहुंचने से बच गई। अब भी उन सपने को याद करती हूं। बात है भी सच ! सारा परिवार तो किसी अदृश्य देश में इकट्ठा है और मैं यहां एकाकी उन सबसे अलग..."

"कई सालों से अनजाना, अनपहचाना चेहरा देखती रही। कभी किसी साधु के रूप में, कभी पुजारी के रूप में, कभी लेखक के रूप में, कभी पीर के। नजर आता है मैं बड़े-से कमरे में अकेली खड़ी हुई हूं। कमरे की सब दीवारें, छत और फर्श ईरानी लाल कालीनों से सजे हुए हैं। मैं सारे कमरे में घूमती हर कालीन को छूकर देखती हूं। कमरे के दूसरी ओर के कोने में से आवाज आती है, 'चंदन !' चौंककर देखती हूं, मर्दाना आवाज कहां से आई ? अधेड़ उम्र का लिम्बा कद, भारी जिस्म, लाल गोल नूरानी चेहरा, हाथ में काबुली रूमाल पकड़े कोई मेरे पास आ रहा है। मोतिया रंग की बोसकी की सलवार, घुटनों तक लम्बी-सी कमीज, सुरमई रंग की पगड़ी, जरीदार पठानी चप्पल। मैंने बहुतेरा पहचानने

दिश की पर पहचान न सकी। 'देख मैं तेरे लिए क्या
काबुली रूमाल में लपेटा एक पेन निकाला—सुनहरी पेन, जिसपर टेढ़ी-
ढी रंग-विरंगी धारियां थीं। उसने मुझे दिया। 'मैं खास तेरे लिए लेकर आया
मैं पेन को इधर-उधर गोल घुमाकर देखती हूं। उसने फिर कहा, 'इसको
न से वरतना। यह वड़ा अच्छा लिखता है। इसकी स्याही न खत्म होने देना!'
र उसने पेन से मेरी वायीं हथेली पर एक लकीर खींचकर वताई। अपनी
थेली पर पेन की निव की गुदगुदी महसूस करते हुए मेरी नींद खुल गई। वैसा
हरा अभी तक तो नहीं मिला अगर मिले तो ज़रूर पहचान लूं। और उस पेन
वाले सपने का महत्त्व अव पता लगता है। हैरान भी हूं। अचानक मेरे हाथ में
कलम कैसे आ गई, कहानियां कैसे उभरने लगी हैं ?"

"जव मैंने पीर खोह वाला सपना देखा, लिखना तो दूर रहा, कभी कोई किताव भी पढ़ती नहीं थी। कभी यह सपना आया था, ध्यान ही नहीं दिया। गुरु नानकदेवजी की जम्मू की यात्रा के वारे में पढ़ते हुए पीर खोह का भी ज़िक्र आया। देखने को जी किया। जम्मू में रहते कई साल हो गये थे। पर 'पीर खोह' कभी भी नहीं गई थी। एक दिन १९७५ की वात है, जव पीर खोह देखने गई तो मैंने सफेद सन्तरी वार्डर की धोती, जो नई ही खरीदी थी, पहनी। जव तहसील रोड की ओर से पहाड़ी के साथ-साथ तंग-सी सड़क पर चल रही थी, रास्ता कुछ जाना-पहचाना-सा लगा। पर मैं तो कभी नहीं गई थी। मन्दि
के पास पहुंचकर हैरान-सी, कभी पहाड़ी के पैरों में वल खाती तवी (नदी)
कभी गोभी-पालक की क्यारियां, कभी कुएं को देख मेरे पैर उस जगह रुक गए
जहां से तवी के पास से पत्थरों की सीढ़ियां मन्दिर के द्वार के पास खत्म हो
हैं—मैंने दो-चार वार नीचे तवी से पहाड़ी पर मन्दिर और मन्दिर से तवी
देखा। यह जगह तो जैसे मैंने देख रखी थी, पहाड़ों की ओट में खड़ी पुजारी
गऊ। मैं दो-चार कदम चली तो मुझे लगा, उतनी पहाड़ी पर चढ़ने के लि
ऐसी ही सीढ़ियां हैं; ऊवड़-खावड़ पत्थरों की। और सच! सीढ़ियां अ
थीं, जिनपर चढ़ते-चढ़ते मैं थक गई थी। मन की तह के किसी कोने में से
कर एक सपना याद आ गया। पर मेरे साथ कौन था ?

मन्दिर के अंदर गई। शिवजी ने जिस गुफा में भक्ति की थी, व

शिवलिंग पड़ा है। सिर झुकाते ही सपने वाला चेहरा जैसे साकार हो मेरी आंखों के सम्मुख आ खड़ा हुआ। पतला सूखा जिस्म, सन्दुरी रंग, सफेद धोती, सफेद कुर्ता और पैरों में अगूठे वाली चप्पल। हम दोनों तवी के किनारे खड़े हुए हैं। मेरे पास खड़े आदमी के हाथ में आठ-दस मोटी-मोटी किताबें हैं। मुझे प्यास लगती है। पानी पीने के लिए जैसे ही अजुली भरने लगती हू कि एक हाथ से पानी लेकर मेरा साथी मेरी अजुली भर देता है। बातें करते-करते हम तवी के किनारे सारे पत्थरों को लाघ आए। पहाड़ी के पैरों के पास गोभी और पालक की क्यारियां हैं। मैं गोभी तोड़कर खाने लग पड़ती हू। और उसने जगली फूल तोड़कर मेरे जूड़े में टांक दिए। 'देखो-देखो सतरगे फूल!' और मैं हस दी, लाल हो गई। दौड़कर सीढ़िया चढने लगी—हाफ गई'''अभी नहीं'''और चढो।' मेरा साथी मुझसे आगे जाकर खड़ा हो गया। मेरी सास फूल रही थी। फिर प्यास'''मैंने कुए के पास जाकर जी भरकर पानी पिया। उसने नीली स्याही के धब्बों वाले रूमाल से मेरे हाथ पोंछे। रूमाल की स्याही मेरे हाथों पर फैल गई।

मैंने सपने में भी सफेद, सिन्दूरी बार्डर वाली धोती बांधी हुई है। धोती की सारी फाल कीचड़ से सनी है। मैं एक हाथ से पल्लू और दूसरे से फाल को इकट्ठा करके मन्दिर की सीढ़ियों के पास बैठ गई। मेरा साथी मेरे पास खड़ा सबसे मोटी किताब में से कुछ ढूढ रहा था। एक पहाड़ी और चढनी थी। वैसी ही ऊबड़-खाबड़ पत्थरों की सीढ़िया। मैं थक-टूटकर कभी खड़ी हो जाती, कभी धीरे-धीरे दो-चार सीढ़ियां चढती। फिर उसने एक हाथ में किताबें और दूसरे से मेरी बांह थाम ली 'और चढ़ो'''थोड़ा और'''धीरे-धीरे से'''सीढ़ी-सीढ़ी चढ़ती आओ!' जहां सीढ़ियां खत्म होती थीं, वहां रोशनी थी, लाल-लाल रोशनी, जैसे उगते सूरज की होती है। और उसकी आवाज हर सीढ़ी पर सुनती थी। 'बस उस रोशनी तक!' हाथ पकड़कर वह मुझे अन्तिम सीढ़ी तक ले ही गया। जहां मेरे चारों तरफ अजीब-सी रोशनी थी। मेरे हाथ पर किताबें रखकर उसने कहा, 'इन्हें जरूर पढना।' सपने में मैंने अपने साथी को मन्दिर का पुजारी समझा था। मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि हाथ पर पड़े किताबों के बोझ से आंख खुल गई। पीर खोह इस सपने से चार-पाच साल बाद गई थी, और अब सोचती हूं, सीढ़ी-सीढ़ी चढ़ती की मंजिल पता नहीं कहां है।"

मेरे अपने सपने

घर की सारी हवा धार्मिक थी, सुबह-शाम पाठ करना, सोने से पहले दस मिनट आंखें बन्द करके मन को ईश्वर के ध्यान में टिकाना घर का नियम था। चाहे घर में मेहमान आए हों और चाहे हम किसीके घर मेहमान हों, अबेर हो जाए, आंखों में नींद भर जाए, पर कोई भी बात इस नियम में भांजी नहीं मार सकती थी।

"परमात्मा की शक्ल कैसी होती है?" एक दिन मेरी बालेपन की ज़बान ने पिताजी से पूछा था। "क्योंकि आंखें मूंदने पर नींद आ जाती है, सामने कुछ दिखता नहीं, अगर आप मुझे परमात्मा की शक्ल बता दें, फिर मैं उसे कल्पना में एक रात रख लूंगी, और नींद नहीं आएगी।" यह जब पूछा था, तब मेरी उम्र मुश्किल से आठ-नौ बरस की रही होगी।

"भगवान की मंज़िल पर गुरु की राह से होकर पहुंचते हैं। यह दस गुरुओं की तस्वीरें हैं, तू इनमें से किसी भी शक्ल की कल्पना कर लिया कर।" पिताजी ने कहा और मैंने दसों गुरुओं की तसवीरें बड़े गौर से देखीं। बार-बार देखीं।

'दस चेहरों की तो कल्पना नहीं की जा सकती, मुझे इनमें कोई एक चेह चुनना पड़ेगा।' मैंने मन में सोचा और अपने चुनाव के बारे में अपने पिता से भी पूछा।

"गुरु नानक के चेहरे की कल्पना किया कर। यह आदि गुरु थे···

"गुरु नानक?···इनकी और तसवीर कोई नहीं? सिर्फ यह एक ही

"किसी चित्रकार ने गुरु नानक को और रूप में बनाया ही नहीं।"

"पर सब चित्रकार उन्हें बूढ़ा क्यों बना देते हैं ? और फिर इस दरख्त पर पिंजरे में पड़ा हुआ तोता मुझे अच्छा नहीं लगता···" मैंने कह दिया, पर फिर सहमकर पिताजी के मुह की ओर देखा। मुझे लगा, मेरे मुंह से कोई बेअदब बात निकल गई थी, और अब पिताजी गुस्से होंगे। पर पिताजी गुस्से न हुए। शायद उन्होंने बाल-मनोविज्ञान को समझ लिया था।

मैं एक तसवीर रखती, एक उठाती, पर बार-बार जहा आंखें थम जातीं, वह छठे गुरु हरगोविन्द जी और दसवें गुरु गोविन्दसिंहजी की तसवीरें थीं। भरपूर जवानी, अंग-अंग में से झलकती बहादुरी, चमकता घोड़ा, और हाथ पर उड़ने को आतुर बाज···

रात को दस मिनट आख मूदने के नियम में दिल लगने लगा—बल्कि शाम के समय से ही एक इन्तजार-सी होने लगती कि किस समय रोटी खत्म होगी, किस वक्त बिस्तरे में होंगे, किस वक्त दस मिनट आखें मूदने का वक्त आएगा···

१६६० में जब मैं बरसों की तहें उलट-पलटकर अपने सपने ढूंढने लगी, सबसे निचली तह मुझे यह १६२८ की मिली थी, जब रातों को अक्सर मुझे गुरु हरगोविन्दसिंहजी का और गुरु गोविन्दसिंहजी का सपना आने लगा। इस मिश्रित रूप का समूचा बुत मानवीय सौन्दर्य की मिसाल होता। अंगों में बहादुरी का सेंक होता, पर उससे चेहरे पर कठोरता न होती, बल्कि उस सेंक से चेहरे के सारे नक्श पिघले हुए होते।

मैं सपने में उनके साथ बातें करती। वह अपना घोड़ा खड़ा कर देते, मैं घोड़े की चमकती पीठ पर अपना छोटा-सा हाथ छुआकर देखती और मैं सपने में सोचती, अगर मैं बाज बन जाऊं···उनके हाथ में पकड़ा हुआ बाज···या मैं तलवार बन जाऊं···उनके गले में पड़ी तलवार···मीरी की तलवार या पीरी की तलवार···

सुबह उठकर मैं अपनी मां को अपना सपना सुना देती। मेरी मां मेरे सपने की बात अपनी सहेलियों को बता देती और फिर अचानक शाम को मेरी मां की सहेलियां आकर मेरे पैरों को हाथ लगा देतीं, 'इसके ऐसे पूर्वजन्म के कर्म हैं, इसे सपने में गुरु का दर्शन होता है।'

एक रात मुझे मेरे सपनों के राजा ने कहा, "देख तू मेरे सपने की बात किसी-को न सुनाया कर—और अब मैं तेरे पास भेस बदलकर आया करूंगा···"

गुरु गोविन्दसिंह का और गुरु हरगोविन्दजी का यह शायद आखिरी सपना था। इसके बाद मुझे मेरे कल्पित महबूब का सपना आने लगा। किसी तसवीर से या किसी इंसान के चेहरे से मैं उसका चेहरा नहीं पहचान पाती थी। उसका नाम मैंने खुद ही सोचकर रख लिया, 'राजन'। उसका सपना मैंने कई बरस तक किसीको नहीं सुनाया। मुझे डर था कि सुनाने से यह सपना भी पहले की तरह आना बन्द न हो जाए।

मेरी छोटी उम्र के और दो सपने मुझे याद हैं। एक यह कि एक बड़ा किला होता। और लोग मुझे उस किले में बन्द कर देते। बाहर पहरा होता। भीतर से कोई दरवाज़ा न मिलता। मैं किले की दीवारों को उंगलियों से टटोलती रहती, पर पत्थर की दीवारों की कोई जगह नहीं पिघलती थी। सारा किला ढूंढ़-ढूंढ़कर जब कोई दरवाज़ा न मिलता, मैं सारा ज़ोर लगाकर उड़ने की कोशिश करने लगती। मेरी बांहों में इतना बल लगता, इतना बल कि मेरी सांस फूलने लगती। फिर मैं देखती, मेरे पैर ज़मीन से ऊपर को उठने लगते। मैं ऊपर उठती जाती, और ऊपर, और फिर किले की दीवार से भी ऊपर हो जाती। सामने आसमान आ जाता। ऊपर से मैं नीचे की ओर देखती। किले का पहारा देने वाले लोग घबराए होते। गुस्से से बांहें फैलाते, पर मुझ तक किसी-का हाथ न पहुंच पाता।

दूसरा सपना था, लोगों की एक भीड़ मेरे पीछे होती, मैं पैरों की पूरी ताकत लगाकर दौड़ती, लोग मेरे पीछे दौड़ते। फासला घटता जाता और मेरी घबराहट बढ़ती जाती। मैं और ज़ोर लगाती, आगे बढ़ती पर सामने दरिया आ जाता। मेरे पीछे आती लोगों की भीड़ में खुशी फैल जाती, "अब आगे कहां जाएगी? आगे कोई राह नहीं, आगे दरिया बहता है···"

—और मैं दरिया पर चलने लगती, पानी बह रहा होता पर जैसे उसमें धरती का-सा आसरा आ जाता। धरती बल्कि पैरों को सख्त लगती है, पानी कोमल लगता, और मैं चलती जाती, सारी भीड़ किनारे पर रुक जाती। कोई पानी में पैर नहीं डाल सकता था। जो कोई डालता, डूब जाता। और किनारे पर खड़े लोग घूरते, खिसियाते, पर किसीका हाथ मुझ तक न पहुंच सकता।

बहुत-से लेखक मध्यम श्रेणी में ही पैदा होते हैं, और धीरे-धीरे ज्ञान के बल पर अपने चेतन यत्नों में अपने मन-माथे से लिपटी संस्कारों की गांठों को खोलते हैं। इसलिए लगता है प्रारम्भिक उम्र के सपनों में वह चाहे चांद-सितारों को छू आएं पर संस्कारों को मन-मस्तिष्क में संजोए रखते हैं। जैसे इसी किताब के प्रारम्भ में बंगाल के बड़े रोमांचक और पैरों की आवारगी के माने हुए लेखक श्री प्रबोधकुमार सान्याल अपने लगातार पंद्रह बरस आने वाले सपने का जिक्र करके कहते हैं कि जिससे उन्होंने प्यार किया, वह बंगाल की विधवा लड़की थी, और वह हमेशा उनके सपने में विधवा वेश में ही आती रही। उसके बदन पर लिपटी सफेद धोती कभी सपने में भी रंगीन न होती। जिन्दगी में उन्होंने सामाजिक रीति-रिवाजों की जो लाज रखी, कभी भूलकर भी एक-दूसरे का हाथ नहीं छुआ, वह 'लाज' उन्होंने सपनों में भी रखी। सपनों में भी उन्होंने अपने-आपको भयमुक्त नहीं होने दिया। इसी तरह जिन्दगी में मैंने जिससे पहली मुहब्बत की थी, वह मुहब्बत समाज की नजरों में वर्जित थी। मैंने उसे सपने में हद तक अवर्जित बनाया पर सिर्फ कुछ हद तक। सिर्फ यह कि मैं उसे सपने में देख सकूं और यह स्वप्न-दर्शन मेरे लिए वर्जित न रहे।

उस समय का एक सपना मैंने अपनी किताब 'काला गुलाब' में लिखा था : "उस रात सपने में मैंने उसकी पीठ देखी। पतले जिस्म पर ढीली सफेद कमीज पहनी हुई थी। मेरे पास मेरे पिताजी खड़े हुए थे, उन्होंने उस पीठ की ओर उंगली की और पूछा, 'पहचान सकती है?' और साथ ही कहा, 'यह तेरी तकदीर है।' " सो, इस तरह सपने में मैंने अपने बाप से यह कहलवाकर अपनी मानसिक हालत के लिए एक तरह की स्वीकृति ले ली थी।

गिनवा नहीं सकती—उसका सपना मुझे जिन्दगी में कितनी बार आया। पर हर सपने में उसके और मेरे दरम्यान का फासला एक निश्चित तकदीर की तरह कायम रहता था। कभी सपने में उसका हाथ मुझे छुआ—पर सिर्फ तब जब मुझे बुखार चढ़ा हो। और वह भी इस तरह कि वह हाथ की हथेली से मेरा माथा छूकर जैसे मेरा बुखार देख रहा हो। सो हाथ की एक छुअन के लिए भी बुखार का सबब सपने में जरूरी था। यह जरूर मेरी मध्य श्रेणी सोच की गुलामी होगी जिससे मैं सपने में भी स्वतंत्र होने का जेरा न कर सकती थी। अगर कभी उसके होंठ मेरे कुछ निकट होते तो चौंककर मेरी नींद खुल जाती।

ज डॉक्टर पैत्रीशिआ गारफील्ड की किताब 'क्रिएटिव ड्रीमिंग' में लोगों की एक अजीब बढ़िया प्रथा के बारे में पढ़ रही हूं कि कैसे वे लोग बच्चों को सपनों के माध्यम से भयमुक्त होने में मदद करते हैं। उनके ा का कोई बच्चा अगर सुबह उठकर बताए कि उसे सपने में धरती अपने बुला रही थी, पर वह एक ऊंची पहाड़ी पर खड़ा हुआ था, जहां से वह ती की ओर आने के लिए झुका तो गिर पड़ा, तो आगे मां बड़ी सहजता से मझाती है : "यह बड़ा बढ़िया सपना था, धरती तुझे प्यार करती है, उसे रूर तुझे कोई बढ़िया चीज़ देनी होगी, तभी बुलाया। पर तुझे पहाड़ी पर से गरना काहे को था ? तू धीरे-धीरे उड़ता, पंछी की तरह धरती पर आ सकता था ।" और इस तरह उड़ने का सुझाव देकर सनाई लोग अपने बच्चों को पंख लगा देते हैं। वह सपने की चोटों से बच जाता है, और जहां भी उसे कोई और रुकावट की गुलामी दिखती है, वह झट स्वतंत्र हो जाता है। इस तरह सनाई लोग सपने का कोई भोग वर्जित भोग नहीं मानते, बल्कि उसको मान-सिक तृप्ति समझकर अपने-आपको दुविधामुक्त कर लेते हैं।

सनाई सिस्टम से प्रभावित होकर डाक्टर गारफील्ड ने अपनी जिन्दगी में आई तब्दीली का भी ज़िक्र किया है, "मेरी ज़िन्दगी का एक लम्बा दुखद सपना था, जो मेरी तेरह बरस की उम्र में हुई एक घटना का नतीजा था। मैं एक वीरान जगह में से गुजर रही थी कि लड़कों की एक टोली मेरे पीछे पड़ गई। वे मुझ 'रेप' करना चाहते थे। मैं तमाम ज़ोर लगाकर दौड़ती रही थी। और आखिर दादी के घर के पिछवाड़े पहुंच गई थी। बच गई थी। तब से सपने भयानक हो गए थे। सनाई सिस्टम को अपने मन में बसा लिया, तो एक रात उ 'रेप' करने वाले लड़कों के सम्मुख तनकर खड़ी हो गई, उनसे लड़ी, उन्हें मा उनकी आंखों में कोई जहरीली चीज़ फेंकी, और मैंने वह लड़ाई जीत ली। अ इस तरह मैं उस घटना से हमेशा के लिए मुक्त हो गई।"

पर मैं ज़िन्दगी के जब कठिन बरसों में से गुज़र रही थी, मेरे पास सनाई सोच नहीं थी, मेरे सपने भयभीत भी थे, अनन्त निराशामय भी। व पांच सपने ये हैं :

सपने चार बरस

१. जख्मी हाथ

देखा, एक बच्चे को स्कूल दाखिला करवाने के लिए गई हूं। स्कूल की साधारण-सी इमारत है। हेडमिस्ट्रेस के कमरे में गई। देखा, हेडमिस्ट्रेस के दोनों हाथ सूजे हुए हैं और उनमें से थोडा-थोडा खून रिस रहा है। एक उबकाई सी आई। पर मन मारकर बच्चे के दाखिले की बात की ।

हेडमिस्ट्रेस ने एक फार्म दिया और घण्टी बजाकर स्कूल की एक अध्यापिका को बुलाया। कमरे में जब वह अध्यापिका आई तो क्या देखती हूं, उसके दायें हाथ पर पट्टी बंधी हुई है।

घबराकर मैं हेडमिस्ट्रेस के कमरे से बाहर आ गई। स्कूल लगा हुआ था, एक क्लासरूम में चली गई—कुर्सी पर बैठी अध्यापिका के दोनों हाथों पर पट्टी बंधी हुई थी। मैं डरकर एक और कमरे की ओर गई—वहां भी कुर्सी पर बैठी अध्यापिका को देखा—उसकी दोनो बाहें ज़ख्मी थी ।

मैं जैसे एक चीख मारकर एक और कमरे की तरफ दौडी—उस कमरे मे खड़ी अध्यापिका के दोनों हाथों मे से पीप रिस रही थी ।

अपनी ही चीख से नींद खुल गई। सोचने लगी, मुझे ज़िन्दगी मे कभी बुरे सपने नही आए थे, यह अचानक क्या हो गया ?

मैंने मन को टटोला—पिछले दिनों में हुए एक हादसे ने मेरी जिन्दगी को अपने पंजे में इस तरह भींचा था कि उसके समूचे बदन पर उन पंजों के निशान पड़ गए थे ।

कोई चौदह बरस हुए, मुझे एक छोटी-सी लडकी की चिट्ठी आई थी : "मेरे से मेरे मा-बाप के चेहरे खो गए हैं। एक रहमदिल स्त्री और उसके पति ने मुझे अपने घर आसरा दिया हुआ है। वे मुझे अपनी बेटी कहते हैं। मैं उनका आदर करती हूं, उनका कहा नही टालती। पर अपनी खोई हुई मां का चेहरा ढूंढती रहती हूं। तुम्हारी रचनाओं में मैं तुम्हें देखती हूं तो उसमें से मुझे अपनी मां का झांवला पड़ता है···" इस बालिका की झोली मे जितना प्यार डाल सकती थी डाल दिया—और इन बरसों मे प्यार और विश्वास की जड़ें दूर-दूर तक फैल गई थीं। पिछले दो बरसों से कुछ गुमनाम चिट्ठिया मुझे मानसिक तौर पर बहुत परेशान कर रही थी। उन चिट्ठियों मे मुझसे रुपया मांगा जाता

…मैं बीमार और हैरान…डॉक्टरों की दवाइयों से रातों की नींद मांगने
ती थी…कभी सोच नहीं सकती थी कि प्यार और विश्वास की जड़ों को
न्दर-अन्दर कोई घुन खा रहा था—और एक दिन वह सारा पेड़ गिर पड़ा।
मुझे लगा, उस पेड़ के नीचे आई मेरी हड्डियों को जरब आ गया था—जोड़
जगह से हिल गए थे—ये चिट्ठियां मुझे वही लड़की लिखती रही, जिसकी
बाल-झोली में मैंने कभी प्यार डाला था।

यह वही दिन थे जब मुझे ज़ख्मी हाथ का सपना आया। स्कूल की इमारत —और स्कूल की अध्यापिकाएं—शायद इसलिए कि वह लड़की भी अब एक स्कूल की अध्यापक थी…

२. मौत की मांग

दूसरा भयानक सपना था—शीशे के आगे खड़ी थी, शीशे में दिखती अपनी शक्ल से सवाल किया—"क्या अभी भी जीना होगा ?"

"हां !"

"नहीं, अब हिम्मत नहीं, बहुत थक गई हूं। तू मेरे खत्म हो जाने में मेरी मदद कर !"

शीशे में दिखती मेरी शक्ल कितनी देर तक मेरी ओर ताकती रही, ताक रही और फिर उसके हाथ हिले, मेरी ओर बढ़े, मेरी गर्दन को छुए, पकड़ सख्त हो गई, हाथ और कस गए, मेरी सांस रुकने लगी, और फिर मेरी घ सांसों से मेरी आंख खुल गई…यह शायद मेरे होंठों पर मौत की मांग थी

३. गीत के स्वर

"और नहीं जिया जाता, बहुत थक गई हूं।" मैं सपने में कह रही

"पर तेरा गीत : चानन दी फुलवारी"…वर्मन कह रहा था।

"हां, पर मैं क्या करूं इस गीत को ? मुझसे अब इस फुलकारी तोपा नहीं भरा जाता। देख मेरी उंगलियां…इनमें सुइयों ने सुरा हैं…"

"तू नहीं मर सकती, अभी तो इस गीत को स्वर देना है। मेरे उंगलियों के सुराख भर जाएंगे…।"

…ाले चार बरस

"तू वर्मन···मेरे गीतों को स्वर देगा ?"

"हां।"

वर्मन के इकरार से मेरी नींद खुल गई। और दूसरे दिन जब मैं स्टूडियो में गई (उन दिनों मैं आकाशवाणी के पंजाबी विभाग में नौकरी करती थी), रामसरन दास पिआनो बजाता मेरे उसी गीत को स्वर देता जैसे वर्मन का इकरार पूरा कर रहा था। और पिआनो के पास खड़ी होकर मुझे लगता रहा, मेरी उंगलियों के सुराख भर रहे हैं। मुझे अभी जीना है, अभी मुझे रोशनी की फुलकारी में कई टांपे भरने हैं···

४. आत्मविश्वास

देखा, मेरे इर्दगिर्द पांच शेर हैं। एक सघन भयानक जंगल है और वे मेरे गिर्द ऐसे घेरा डालकर चलते हैं, जैसे मेरा पल-भर को भरोसा नहीं करते। चलती रही पता नहीं कितनी राह, और फिर मैंने उन्हें कहा, अगर वे मुझे थोड़े से पलों के लिए एक छोटी-सी पहाड़ी के पीछे अकेले बैठ लेने दें—मैं एक गीत लिखूंगी। उन्होंने मान लिया, मुझे कागज दे दिया, कलम दे दी, और खुद पहाड़ी के पास जैसे पहरा देने बैठ गए।

जैसे ही पहाड़ी के पीछे गई, देखती हूं एक छोटी लाल ईंटों का बना हुआ मकान है। मकान के अन्दर गई। इसमें कोई नहीं बसता दिखता। पर मकान के खिड़की-दरवाज़े साबुत हैं। भीतर की सभी कुण्डियां ठीक हैं। और मैंने उस मकान के भीतर जाकर सभी कुण्डियां बन्द कर लीं। कुछ देर के बाद सुना कि बाहर शेरों के गरजने की आवाज आ रही है। आवाज मेरे समूचे बदन में उतरती जा रही थी, और मैं कांपते हाथों से बार-बार कुण्डियों को टटोलती थी। पता नहीं कितनी देर हो गई। शेर परेशान थे। दूर-दूर तक दौड़ते, फिर उस मकान के चक्कर काटते, मुझे खोजते···

अचानक मुझे भूख-सी लग आई। और साथ ही ख्याल आया, इस मकान में मैं शेरों की पकड़ से तो बच जाऊंगी, पर भूख-प्यास से तिल-तिल करके मरूंगी।

घर में देखा—सूखे फलों के जैसे अम्बार लगे हुए थे···और मकान की ऊपरली छत पर पता नहीं ताज़े फलों के कितने ही पेड़ थे। एक जगह सीढ़ियां

ही अन्दर निचले हिस्से में जाती दिखीं। मैं मकान के उस हिस्से में गई। नीचे एक चश्मा था जिसका पानी एक बड़ी धारा में मकान से बाहर वह था। यह कैसा मकान था—जहां हर एक तरह की हिफाज़त थी, खाने पीने की कोई कमी न थी और फिर मेरे पास कागज़ भी था और कलम ...

रात के इस सपने को मैंने दिन के उजाले में सोचा तो समझा शायद यह पांच शेर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के चिह्न थे। मैं उनसे बचना चाहती थी। उनकी गरज से, उनके पंजों से···और वह मकान शायद आत्म-विश्वास का चिह्न था जो किसी चीज़ की कमी नहीं आने देता। वहां सुरक्षा भी थी और तृप्ति भी।

५. काला गुलाब

गाड़ी में सफर कर रही थी। सामने की सीट पर एक बुजुर्ग चेहरा था, बड़ा कोमल और चमकता-सा। लम्बे सफर में मैं किताबों के वरके उलटती रही, और फिर मेरी चुप किताबों ने उस बुजुर्ग को बातों में लगा लिया। उसने पूछा, "तूने कभी काला गुलाब देखा है?" कहा, "काला गुलाब?···नहीं।" वह कहने लगा, "यहां और थोड़ी देर बाद एक स्टेशन आएगा, वहां से एक राह एक छोटे-से गांव को जाती है। उस गांव में गुलाब के फूलों का एक बाग है। उस बाग में थोड़े-से लाल रंग के गुलाब हैं, बाकी सारा बाग, का गुलाब के फूलों से भरा हुआ है···"

"सच?"

"तू वह बाग देखना चाहेगी?"

"मैं यही सोच रही हूं···काश, मैं वह बाग देख सकूं!"

"उसकी एक कहानी भी है।"

"क्या?"

"जो तू वह देखने चले, मैं वहां ही यह कहानी सुनाऊंगा।"

"मैं चलूंगी!" कहा और फिर एक स्टेशन पर मैं और वह बु गए। एक लम्बी कच्ची डगर पर चल पड़े, वहां कोई सवारी नहीं जा और फिर सचमुच हम एक बाग में पहुंच गए। इतना बड़ा औ

गुलाब मैंने कभी जिन्दगी में नहीं देखा था। गुलाब की पत्तियों पर से नज़र फिसल-फिसल जाती थी। बहुत बड़ा बाग था, एक छोटे-से हिस्से में गहरे लाल रंग के गुलाब थे, और एक छोटे-से हिस्से में एक सफेद दूधिया रंग के; बाकी तमाम मील-भर तक फैला बाग काले स्याह गुलाब से भरा हुआ था।

"इसकी कहानी ?"

"कहते हैं एक औरत थी, बड़े सच्चे मन से उसने किसीको मुहब्बत की। एक बार उसके महबूब ने उसके बालों में एक लाल गुलाब का फूल टांका। और औरत ने मुहब्बत के बड़े प्यारे गीत लिखे। पर वह मुहब्बत असफल रही। उस औरत ने अपनी जिन्दगी समाज की गलत कीमतों पर वार दी। एक असह्य दर्द उसके दिल में पड़ गया। और वह तमाम उम्र अपनी कलम को उस दर्द में भिगोकर गीत लिखती रही। आत्मपीड़ा एक वह नज़र होती है जिस नज़र से कोई पराई पीड़ा को देख सकता है। उसने अपने दर्द में समूचे इंसानियत के दर्द को मिला लिया और फिर ऐसे गीत लिखे—जिनमें सिर्फ उसका नहीं, दुनिया का दर्द था।"

"फिर ?"

"जब वह औरत मर गई, उसको इस धरती में दफनाया गया—उसकी कब्र पर पता नहीं किस तरह तीन फूल उगे। एक फूल लाल रंग का, एक काले रंग का और एक सफेद रंग का।"

"अजीब बात है !"

"और फिर वे फूल खुद ही बढ़ते गए। न किसीने पानी दिया, न किसीने रखवाली की। और धीरे-धीरे यहां एक फूलों का बाग बन गया। अब तूने अपनी आंख से देख लिया है, एक हिस्से में लाल रंग के गुलाब हैं, एक हिस्से में सफेद रंग के, और बाकी सारे हिस्से में काले रंग के।"

"लोग क्या कहते हैं ?"

"लोग कहते हैं, उस औरत ने जो मुहब्बत के गीत लिखे, वे लाल गुलाब बन गए हैं—और जो दर्दों के गीत लिखे वे काले गुलाब हो गए हैं—और जो उसने इंसानी प्यार के गीत लिखे, वे सफेद गुलाब बन गए हैं।"

सिर से पैर तक मुझे एक कंपकंपी आई और मैंने उस बुज़ुर्ग से पूछा, "आपका नाम क्या है ?"

"मेरा नाम ?…मेरा नाम 'समय'।"

" 'समय' ! तू मेरी कहानी ही मुझे सुना रहा है ?" और समय की मुस्कराहट से और मेरी अपनी कंपकंपी से मेरी नींद खुल गई।

उस वरस के अन्त में (१९६० में) मैं एक साइकेट्रिस्ट के इलाज में रही। अपने-आपको जानने के लिए, उसके कहने के मुताविक रोज़ के खयालों और सपनों को कागज़ पर लिखा करती थी। उन दिनों के अजीवो-गरीव सपने जो डॉक्टर के पढ़ने के लिए लिखे थे, ये हैं :

१

किसी वड़ी ऊंची इमारत के शिखर पर मैं अकेली खड़ी होकर अपने हाथ में पकड़ी हुई कलम से वातें कर रही थी, "तू मेरा साथ देगी ?—कितने दिन मेरा साथ देगी ?" अचानक किसीने कसकर मेरा हाथ पकड़ लिया। "तू छलावा है, मेरा हाथ छोड़ दे !" मैंने कहा और ज़ोर से अपना हाथ छुड़ाकर उस इमारत की सीढ़ियां उतरने लगी। मैं वड़ी तेज़ी से उतर रही थी, पर सीढ़ियां खत्म नहीं हो पा रही थीं। मेरी सांस उतावली हुई जा रही थी कि अव पीछे से आकर वह छलावा मुझे पकड़ लेगा। अन्त में सीढ़ियां खत्म हो गईं, पर नीचे उतरकर देखा, हर तरफ वाग ही वाग थे, और ज़मीन का चप्पा-… लोगों से भरा हुआ था। ये वाग भी उसी इमारत का हिस्सा थे और वहां लोगों का मेला लगा हुआ था। किसी तरफ लोग नाटक खेल रहे थे, किसी तरफ कोई मँच। पता नहीं कहां से मेरा पुराना साइकिल मुझे मिल गया और मैं साइकिल पर चढ़कर वाहर जाने का रास्ता ढूंढ़ने लगी। वागों के किनारे-किनारे साइकिल चलाती मैं जिस भी तरफ जाती, वहां आगे पत्थर की दीवार आ जाती और मुझे वाहर जाने का रास्ता न मिलता। मैं फिर किसी और तरफ साइकिल मोड़ती, पर वहां भी अन्त में दीवार आ जाती, और मुझे वाहर जाने का रास्ता न मिलता—इसी घवराहट में मेरी नींद टूट गई।

२

सफेद संगमरमर का एक वुत मेरे सामने पड़ा हुआ था। मैं उसकी ओर

देखती रही, देखती रही और फिर मैंने उसे कहा, "मैं तेरा क्या करूं ! न तू बोलता है, न सास लेता है ! आज मैं तुझे तोड़ दूंगी, टुकड़े-टुकड़े कर दूंगी। तूने मेरी सारी उम्र गवा दी है ! मेरा तसव्वुर, तू मेरा आदर्श !" और जब मैंने ज़ोर लगाकर उस बुत को परे फेंका, मेरे अपने ही ज़ोर से मेरी आंख खुल गई।

३

मैंने देखा, मेरे पास एक लड़की खडी हुई थी। कोई बीस बरस की होगी। पतली-लम्बी और उसका नैन-नक्श जैसे किसीने बड़ी मेहनत से गढ़ा हो। पर उसका रंग काला और चमकदार था जैसे किसीने एक काले पत्थर को तराश-तराशकर एक बुत बनाया हो। "यह कौन है ?" मुझे किसीने पूछा। "मेरी बेटी !" मैंने जवाब दिया। पूछने वाला कौन था, यह मुझे पता नही, पर उसने फिर हैरान होकर पूछा, "मैंने तेरे दो बच्चे देखे हुए हैं, वे बहुत सुन्दर हैं। सुन्दर तो यह भी है, पर इसका रंग···" कहा, "वे दोनो छोटे हैं। उनका रंग गोरा है। यह मेरी सबसे बड़ी बेटी है···तुझे पता है पार्वती ने एक बार अपने बदन की मैल इकट्ठा करके एक पुत्र गणेश बना लिया था। मैंने अपने मन के *तमाम रोष को बटकर यह बेटी बनाई है···मेरी कला···मेरी रचना···"*

४

मैं एक उजाड़ मे से गुज़र रही थी। मुझे किसीकी शक्ल नजर नही आई, पर एक आवाज आई। कोई गा रहा था। "बुरा कीतोई साहिबा मेरा तरकश टंगिओ ई जंड !" मैंने उजाड़ मे खड़े होकर चारों ओर ताका और पूछा, "तू कौन है ?" जवाब मिला, "मैं बहादुर मिरजा हूं ! साहिबा ने मेरे तीर छुपा दिए और मुझे लोगों के हाथ से बिन आई मौत मरवा दिया।" मैंने फिर चारो तरफ देखा, पर मुझे किसीकी शक्ल नज़र न आई। जवाब दिया, "कभी-कभी कहानियां करवट बदल लेती हैं, आज एक मिरज़े ने मेरे तीर छुपा दिए हैं और मुझे एक बहादुर साहिबा को अन आई मौत मरवा दिया है।"

५

बादल बड़े ज़ोर से गरजे। समूचा आसमान कांप रहा था। और फिर ३

हाथ पर बिजली गिर पड़ी। मेरे जिस्म को एक सख्त झटका लगा और मैंने संभलकर अपने हाथ को हिलाकर देखा। हाथ बिलकुल ठीक था। र्फ एक जगह से थोड़ा खून बह रहा था जैसे एक खरोंच आ गई हो। दूसरी र फिर बिजली कड़की और मेरे उसी हाथ पर गिर पड़ी। फिर एक सख्त टका लगा और मैंने जब हाथ को हिलाकर देखा, वह बिलकुल साबुत था; सिर्फ एक जगह ऐसे था, जैसे थोड़ी-सी रगड़ आ गई हो। तीसरी बार फिर आसमान फट गया और मेरे उसी हाथ पर बिजली गिर पड़ी। सख्त झटका लगा। पर उसके बाद मैंने जब हाथ को हिलाया तो हाथ हिलता ज़रूर था, पर एक उंगली टेढ़ी हो गई थी। मैंने अपने दूसरे हाथ से उस उंगली को दबाया, बार-बार भींचा, और वह सीधी हो गई, अपनी जगह पर हो गई—मैंने अपने हाथ में कलम पकड़कर देखी, मेरा हाथ बिलकुल ठीक था, मेरी कलम अब भी लिख रही थी, जागी तो मेरे मन की हालत बादलेअर के मन सरीखी थी, जब उसने 'सुन्दरता का विरद' लिखा था !

तू ऊंचे आसमान में से उतरी है, कि गहरे पाताल में से निकली है
तेरी चितवन निरी शराब, दैत्यमयी भी और देवमयी भी।
तेरी आंखों में सांझ भी और सवेरा भी।
तेरी सुगन्ध जैसे शाम की अंधेरी सी।
तेरे होंठ, दारू का एक घूंट, तेरा मुंह एक जाम
तू किसी खोह खन्दक में से उभरी है कि तारों में से जन्मी है ?
तू एक हाथ से खुशी बीजे, दूसरे से तबाही
तेरे गहनों की छनक कितनी भयानक !
तेरा आलिंगन, जैसे कोई कब्र में उतरता जाए—

सपने और कविताएं

अपनी कलम के प्रारम्भिक बरसों में मैंने कई नज़में सपनों में लि[illegible] कइयों की कुछ पंक्तियां जागकर याद रह जाती थीं, कइयों की [illegible] पंक्ति। पर एक नज़्म पूरी की पूरी याद रह गई थी, जो जागकर [illegible] कागज़ पर उतारी थी। वह नज़्म यह है :

[illegible] अपने चार बरस

यह सारी रात तेरे ख्यालों में बिताकर
मैं अभी-अभी जागी हूं सातों बहिश्तें देखकर
यह रात जैसे कुछ रहमत-सी बरसती रही
यह रात तेरे वायदों को पूरा-सा करती रही
पंछियों की तरह उडते कितने ख्याल आते रहे
मेरे होंठ तेरे सासों की महक को पीते रहे
दीवारें बहुत ऊंची हैं, रोशनी दिखती नहीं
यह रात सपने खेलती है और कुछ कहती नहीं

इस नज़्म मे जागने का जिक्र भी है, पर यह जागना सपने मे जागना है, सपने का हिस्सा। सपना यह था कि जिस किसीको बरसों चुपचाप मुहब्बत करती रही थी उसे सपने में देखा था। सपने में मुझे बुखार चढा हुआ था, और उसने मेरे तपते माथे पर आहिस्ता से हाथ रखा था। वही चुपचाप चेहरा।

"मैंने सोचा था तुम कभी नही आओगे!" मैंने उससे पूछा तो उसने जवाब दिया, "मैं जानता था मैं आऊगा।" और इसके बाद न मेरे होठों पर कोई लफ्ज आया था, न उसके होठों पर, और शायद यही वक्त था जब मैं जाग गई थी (सपने मे) और एक नज़्म लिखी थी। जब वास्तव में जागी तो वह सारी की सारी नज़्म मेरे होंठो मे छलक रही थी।

जिस सपने मे जागना भी सपने का हिस्सा होता है उसको स्वप्नान्तर कहते हैं। अपनी एक नज़्म मैंने जिस सपने के बाद लिखी थी उस नज़्म का और सपने का जिक्र मैंने अपनी 'काला गुलाब' नामक किताब मे इस प्रकार किया था :

"एक रात के सपने मे मैंने देखा कि एक जंगल फूलों से भरा हुआ था, जिसमें एक फूलो से लदे हुए पेड़ पर एक कुकनूस बैठा हुआ था, और वह गा रहा था। ज्यों-ज्यों गीत ऊंचा होता गया, कुकनूस की आवाज में एक मिठास और एक तलखी पैदा होती गई। इतनी कि वह एक आग की लपट बन गई। आग की यह लपट ऊंची होती गई और सारे का सारा कुकनूस जलने लगा। कुकनूस के पंखों मे से आग की कई लपटें निकलने लगी।

आग के सेंक से मेरी नींद खुल गई। मेरा माथा, मेरे हाथ, मेरा समूचा

बदन जल रहा था। इस सेंक से मैंने एक गीत लिखा :

लिख जा मेरी तकदीर को मेरे लिए
मैं जी रही तेरे बिना तेरे लिए
उम्र भर का इश्क बेआवाज़ है
हर मेरा नग़मा मेरी आवाज़ है
लफ्ज़ मेरे तड़प उठते इस तरह
रात को तारे सुलगते जिस तरह
चीरकर सपनों को तू आजा ज़रा
रात बाकी बहुत है न जा ज़रा
कुकनूस दीपक राग को अब गाएगा
इश्क की इस लपट पर जल जाएगा
राख ही इस राग का अंजाम है
कुकनूस की इस राख को प्रणाम है।

कई महीने यह सपना, कई महीने यह जलन—यहां तक कि मैं पैरों में चप्पल न पहन सकी, पैर जलते, कच्ची मिट्टी पर पानी छिड़ककर मैं अपने दोनों पैर रख लेती…"

'काला गुलाब' में एक और सपने का, एक नज़्म का, और मेरी खुद की हुई उसकी एनैलेसिस का जिक्र इस तरह है :

"कोई बरस-भर थोड़े-थोड़े दिनों के बाद मुझे एक सपना आता रहा—अथाह, अपार समुद्र मुझे अपनी ओर बुलाता है, आवाज़ देता है, 'देख मेरी बांहें कितनी विशाल हैं, कितनी कोमल और कितनी मज़बूत, मैंने तेरे लिए दोनों बांहें पसार रखी हैं…मेरी छाती कितनी चौड़ी, कितनी नर्म…"

समुद्र के किनारे एक होटल का कमरा लेकर मैं कई दिन बैठी रही और समुद्र को देखती रही। एक नज़्म लिखी, उसके बुलाने के जवाब में :

तुम्हारे पास अनेकों लहरें हैं
यह कैसी रात है और कैसा चांद
आज मेरे दिल में ज्वार उठ रहा है
तुम्हारे पास अनेकों मोती हैं
और चौदह रत्न भी

देखो अपनी एक सीप में
मेरे दिल की बात संजो लो

× × ×

किनारों से रिश्ता तोड़कर
इश्क का यात्री अकेले चल पड़ा
यह 'आज' कैसी नाव है
और 'कल' कैसा टापू होगा
दिल के पानी में लहर उठी
और एक सफर लहर के पांव से लिपटा हुआ
देखो किरणें हमें बुलाने आई हैं
कह रही हैं, चलो, सूरज के घर चलो।

इसमें 'एक बात' जो मैंने समुद्र से कही कि अपनी एक सीप में संजो ले, वह बात है कि अगर तू मेरे जिस्म को अपनी बांहों में भींच भी ले तो भी मेरे दिल को वह आलिंगन नहीं मिलेगा—जो मेरी उत्कण्ठा है (मेरे महबूब की बांहों की छुअन)। आज धरती के किनारे से मेरे 'आज' की नाव ने अपनी रस्सी खोल ली है, और इसमें मेरा इश्क अकेले यात्री की तरह बैठा हुआ है···"

एक ओर मेरे सपने का, और नज़्म की दो पंक्तियां सपने में लिखने का, और बाकी जागकर लिखने का जिक्र 'काला गुलाब' में इस तरह है:

"सपना आया—एक रेगिस्तान है—मीलों तक रेत अटा हुआ है और उस रेगिस्तान में एक मकान बना हुआ है। उस मकान के दरवाजे पर एक औरत खड़ी हुई है—उसका नाम है जिन्दगी। इस तरह की हार कभी किसी औरत के मुंह पर नहीं होगी, जैसी हार उसके मुंह पर है। उसके चेहरे से लगता है जैसे वह बरसों से उस रेगिस्तान को देख रही हो, और कभी उसका महबूब उस राह से न गुजरा हो—बरसों में फल पकते और झरते रहे हों। और अब वह थक गई हो, बहुत थक गई हो—और फिर उस औरत ने सोचा, वह घर का दरवाजा बन्द कर लेगी—हमेशा के लिए और कभी किसी की राह नहीं ताकेगी। मैं पता नहीं कैसे वहां पहुंची। नहीं जानती जो कुछ उसके मन में था,

मैं जान पाई, पर मैंने उस औरत का हाथ पकड़ लिया। मेरे मुंह पर एक मुस्कान थी, एक चमक थी, मैंने उसे कहा :

ज़िन्दगी का द्वार मत बन्द करो, अपने विश्वास की लाज रख लो।

देखो मरुस्थल से कदमों की आवाज़ आ रही है।

और मैं भी उसके पास खड़ी होकर रेगिस्तान की ओर ताकने लगी—मेरे कानों में किसीके कदमों की आहट आ रही थी।

कई वरस हो गए थे, जब मैं सुवह जागती थी, मेरा अंग-अंग जैसे थका हुआ होता था, मेरे सिर में एक तेज़ दर्द हो रहा होता—उस दिन जब मैं जागी—लगा, मैं कभी इस तरह नहीं जागी थी। अंगों को जैसे पंछियों के पंख लग गए थे···"

समूचा सपना याद आया। सपने में कही दो पंक्तियां याद आईं—और मैंने उस समय कागज़-कलम लेकर एक पूरी नज़्म लिखी।

एक नज्म का अलौकिक अनुभव

एक वार मैंने नज़्म लिखी थी 'नौ सपने'—ये सपने मैंने नहीं मेरी कल्पना ने देखे थे, अपने लिए नहीं, सिक्ख इतिहास की पात्र तृप्ता के लिए। गुरु नानक का जन्म तृप्ता की कोख से हुआ था। मैं इतिहासकार नहीं, सो नानक-वार्ता इतिहासकारों के ज़िम्मे छोड़कर मैंने सिर्फ उन नौ महीनों की वार्ता लिखी थी जब नानक जैसा वेटा मां के गर्भ में था।

लगा, एक साधारण मां, साधारण वच्चे की रचना करते हुए भी अगर नौ मास के लिए एक छोटा-सा भगवान हो सकती है, तो नानक सरीखी रूह को जन्म देते हुए एक मां कैसा भगवान रही होगी! सो, गर्भ के नौ महीनों की रचना के नौ महीनों की कल्पना करके मैंने तृप्ता के नौ सपने लिखे थे।

जैसे दुनिया का प्रसिद्ध चित्रकार वानगॉग लिखता है कि कभी-कभी किसी वढ़िया किताव को पढ़कर दीवानगी का एक आलम छा जाता है। मैं असीम हो जाता हूं, शक्लें, तसवीरें मेरे सामने इस तरह आती हैं जैसे कोई सपना आ रहा हो···उसी तरह मां तृप्ता के सपने लिखते समय, सपनों की सारी क्रिया मेरे सामने शून्य में उभरते और मिटते आकारों की तरह आई थी। हर महीने गर्भ के वदलते चिह्नों के अनुसार ये सपने अपना आकार वदलते दिखे। तृप्ता

को गर्भ की पहली रात अपने पति की सेज से उठते हुए देखने से लेकर उसके वदन में से उठती प्रसूति की पहली पीडा तक।

बच्चे को कोख में धारण करने वाला पहला पल नज़्म में मां तृप्ता का अलौकिक सपना है—जब वह नदी में स्नान करती है और नदी में तैरते चांद को हथेलियों में लेकर पानी का घूंट भरती है। और चांद का प्रकाश उसकी कोख में हिलने लगता है।

गर्भ का दूसरा महीना दूसरे सपने जैसा है, जब उसको अपनी कोख में एक घोंसला बनता-सा लगता है। और उसे आभास होता है कि तपस्वियों को भगवान के दर्शन पता नहीं कैसे और किस जगह से होते हैं, पर एक मां को ज़रूर अपनी कोख में से होते हैं।

तीसरे महीने के तीसरे सपने में उसका जी मितलाता है, वह घड़िया में दही मथती है और मक्खन निकालने के लिए जब घड़िया में हाथ डालती है तो घड़िया में से सूरज का पेडा निकलता है···

चौथे सपने में वह गेहूं को फटकने के लिए सूप में डालती है, तो हाथ में पकड़ा हुआ सूप गेहूं के दानों की जगह तारों से भर जाता है। (यह चौथा सपना सिर्फ कल्पना की करामात नहीं थी, तारों का भरा सूप मैंने नींद के सपने मे देखा था। और मेरी खुद ही तारों की रोशनी से चौंककर नींद टूट गई थी। और यह भी साक्षात् सामने था कि वह सूप मेरे हाथ में नहीं था, तृप्ता के हाथ में था। मैं सिर्फ उसकी दर्शक थी।)

पांचवां सपना जल-थल में से उठते एक नाद का सपना है। जिस नाद को सुनकर तृप्ता सोचती है कि यह मोह काया-माया का गीत है कि भगवान की काया का संगीत है। इसी सपने में उसे अपनी नाभि में से सुगन्ध आती है और यह हिरणी की तरह कस्तूरी की सुगन्ध ढूंढती बनों में दौड़ती है—और कभी अपनी कोख से अपने कान लगाती है···

छठे महीने जब गर्भ का बच्चा कभी हिलता-डुलता है, वह सपने में सरोवर के किनारे उतरता एक हंस देखती है और उसे जागकर भी लगता है कि सपने में देखे हुए हंस का पंख सचमुच उसकी कोख में हिल रहा है···

सातवें महीने में उसकी झोली में कोई नारियल डालता है, जिसे तोड़कर वह सारे जगत् में गरी बांटती है, पर नारियल की गरी नहीं खत्म होती। और,

जब जागती है—नारियल का पानी उसकी छातियों में दूध की तरह भरा लगता है…

इस सातवें सपने का नारियल ज़रूर मेरे अचेतन मन में पड़ा हुआ शगुन का चिह्न होगा, क्योंकि पुरानी रीतियों-रिवाजों के अनुसार औरत की झोली में नारियल डालना उसके लिए पुत्र की कामना करना होता है। पर आगे जगत् में गरी बांटने का और गरी के न खत्म होने का चिह्न मेरे चेतन मन की सोच है, जिसको मैंने ज्ञान के साथ जोड़ा है, जो बांटने से खत्म नहीं होता।

आठवें सपने में भी तृप्ता अपने बच्चे का कुर्ता बनाने के लिए सपने में चरखा कातती है, तो पूनी में से सूत के तारों की जगह पतली, लम्बी और चमकती किरणें निकलती हैं। यह ज़रूर मेरे चेतन मन की कल्पना है, जिसके द्वारा मैंने तृप्ता को हो रही ज्ञानप्राप्ति की कल्पना की है कि मोह के तारों में आसमान नहीं लपेटा जा सकता। यह तो कोख में सच-सी वस्तु है, और सच-सी वस्तु को किसी चोले में नहीं लपेटा जा सकता। इस सपने में तृप्ता अपनी कोख के आगे माथा झुकाती है और कुदरत का यह भेद जान जाती है कि यह तो कोई अनादिकाल का जोगी है, जो मौज में आकर मेरी कोख की धूनी सेंकने बैठ गया है। इसी आठवें सपने में तृप्ता मोह और वैराग्य का अनादि रहस्य प लेती है।

नौवां सपना प्रसूति की पहली उठती पीड़ का है—जब उसे कोख की बून में से आग की पहली लपट उठती दिखाई देती है और उस रोशनी के तिनके उसकी देह दीये की तरह प्रज्वलित हो जाती है।

इस नज़्म को न मैं निरे रातों के सपने कह सकती हूं, न मेरी जाग अवस्था की कल्पना। यह अनुभव मुझे ज़िन्दगी में सिर्फ एक बार हुआ है, इसमें मैंने एक वह अवस्था देखी है जब सोने और जागने का भेद मिट जाता एक चेतनता जो सोते हुए भी बनी रहे, और एक अचेतन अवस्था जो जागते भी बनी रहे।

बीस बरस लम्बा एक सपना

इमरोज़ मेरी ज़िन्दगी का पहला वाकिफ इंसान था, जिसे मैंने अपने से अपने चौदह बरसों की असफल मुहब्बत की कहानी सुनाई थी। उसने

चाप कहानी सुनी, और मैं हैरान-सी रह गई, जब उसने उठते समय सिर्फ इतना कहा, "जो मैं उसकी जगह होता…"

सिर्फ इतने अक्षर, और उसने आहिस्ता से यह कहकर आंखें नीची कर ली थी।

पता नहीं मेरे अन्तस् के किस सेंक से उसका चेहरा पिघल-सा गया था। फिर वह चुपचाप चला गया। और तमाम दिन उसका पिघला चेहरा मुझे दिखता रहा। उस रात मुझे सपना आया था—मैं बीमार हूं, वह मेरी चारपाई के पास आकर खड़ा हो गया है, उसने मुझे एक गहरी नज़र से देखा, और थोड़ा-सा आगे झुककर कहा, "क्या मैं साहिर नहीं बन सकता?"

उसने सीधा उसका नाम लेकर कहा जिसके साथ मैंने अपनी असफल मुहब्बत की बात सुनाई थी…और मैं चौंककर सपने से जाग गई।

इससे पहले मैंने चेतन मन से कभी इमरोज़ को साहिर की जगह पर रखकर नहीं सोचा था। यह मेरी पहली सोच थी, जो मेरे अचेतन मन ने मुंह से बोलकर कही। मेरी ज़बानी नहीं, शायद अचेतन मन सकुचा गया था, उसने इमरोज़ की ज़बानी कही।

अगले बरसों में इमरोज़ ही मेरी ज़िन्दगी की हकीकत बना। पर यह सपना आने वाली ज़िन्दगी का जैसे पहला इशारा था। एक होनी की भविष्यवाणी जैसा।

१९७७ में मैंने एक लेख लिखा था 'लिविंग विद इमरोज़'। यह 'यूथ टाइम्स' के सितम्बर १६-२९ अंक में छपा था। उसमें मैंने अपने उस सपने का ज़िक्र किया था, जो करीब बीस बरस मुझे लगातार आता रहा था कि वहां कोई मकान है, दोमंज़िला। मैं सीढ़ियां चढ़कर दूसरी मंज़िल पर पहुंचती हूं तो देखती हूं—वहां कोई कैनवस पर पेण्ट कर रहा है। वह मेरे लिए बिलकुल अजनबी है, पर वह मुझे देखकर हैरान होता है, फिर मुझे अपनी कैनवस दिखाता है, जिसपर हू-ब-हू मेरी तसवीर है।

यह सपना करीबन हर बार एक जैसा होता था, सिर्फ खड़े होने, बैठने के थोड़े-थोड़े फ़र्क के साथ। मकान हमेशा वही हुआ करता था, जिसकी दूसरी मंज़िल की खिड़की एक जंगल की तरफ खुलती थी। खिड़की से बाहर देखने पर सिर्फ पेड़ दिखते थे, या एक नदी…।

वहां दूसरी मंज़िल पर उस अजनबी को देखकर अजीव सकून आता था—उसका सांवला, उदास और गंभीर चेहरा। और लगता था सारी उम्र से मैं उसे ढूंढ़ रही थी। और वह वहां वैठा वरसों से मेरी इन्तज़ार कर रहा था।

पर यह सपना इमरोज़ से मिलने के वाद कभी नहीं आया। जो घटना कभी ज़िन्दगी की हकीकत वननी थी, लगता था, उसीकी परछाईं मैंने वीस वरस पहले देखी थी, और फिर लगातार वीस वरस तक देखती रही…।

आज अपने इस सपने की वात करते हुए मुझे प्रसिद्ध रूसी लेखक वोरिस पास्तरनाक का वह सपना याद आया है—जिसे वह अपनी ज़िन्दगी का सवसे उदास सपना कहता था। वह सपना यह था कि एक विलकुल सूना मैदान है, जिसे देखने से ही अहसास होता है कि मारवर्ग शहर दुश्मन के कब्ज़े में है। यह दिन का एक ऐसा अंधेरा समय है, जो वास्तविक जीवन में कभी नहीं होता। लोग एक अजीव खामोशी में लिपटे हुए हैं, जिस तरह ज़िन्दगी में कभी नहीं होते। और पास्तरनाक को आने वाला यह सपना सचमुच आने वाली जंग का सपना था।

कोई सपना भविष्य की किसी घटना का सूचक हो सकता है, मैं नहीं जानती, सिर्फ जानती हूं कि मेरा वीस वरस लम्वा सपना सचमुच एक दिन मेरी ज़िन्दगी की हकीकत वन गया। शायद इसका कारण सिर्फ यह हो कि पास्तर-नाक के लफ्ज़ों में "कोई दृढ़ विचारों का आदमी जव अपने किसी निजी कानून पूर्ति चाहे तो कई वार कुदरत मजवूर होकर अपना कानून भंग कर देती है"—और शायद जो मेरी ज़िन्दगी का असम्भव था, वही मेरे वीस वरसों की ज़िद को देखकर संभव हो गया…।

अपने पात्र : अपने सपने

शायद और लेखक भी इस तरह करते होंगे, पर मैंने कई वार किया है कि अपने सपने, अपने नॉवलों में अपने पात्रों के सपने वनाकर लिखे हैं।

आज सपनों की वात करने लगी हूं तो एक अजीव वात सामने आई है कि जिन दिनों मैं कोई नॉवल लिख रही होती हूं, उन दिनों मुझे एक ऐसा अजीव सपना क्यों आता है, जो वास्तव में मेरे नॉवल के पात्र को आना चाहिए। नहीं तो नॉवल के पात्र-निर्माण में मेरा सपना कैसे उसकी सोच का हिस्सा वन सकता

है ? शायद मैं पात्र के साथ इतनी एकजान होती हूं कि मैं खुद उसकी जगह सपने में से गुजरती हूं। पता नहीं। पर अपने कुछ वे सपने जरूर गिन सकती हूं जो मैंने अलग अलग समय अपने नॉवलों में डाले थे।

मेरे पहले नॉवल 'डॉक्टर देव' में उसकी मुख्य पात्र ममता जब अपने महबूब और अपने बच्चे से जबरन अलग कर दी जाती है और जिसके कारण उसे बाद में अपने खाविंद और अपनी बच्ची से भी बिछुड़ना पड़ता है, वह एक स्कूल में नौकरी करते हुए अपने एकाकीपन को ऐसे कबूल कर लेती है कि एक दिन सपने में उसका कमरा बहते पानी जैसा हो जाता है, और कमरे का पलंग एक किश्ती की तरह। वह अकेली किश्ती में बैठी हुई पानी के बहाव में बह रही है। बारी-बारी किनारे पर सबको देखती है—अपने खाविंद को भी, अपने महबूब को भी। और उन परछाइयों को आंखें भरकर बारी-बारी से विदा कहती है…किनारे की भीगी रेत पर खड़े बच्चों को भी देखती है, और कांपकर सिर नीचा कर लेती है…।

यह सपना नामों के फर्क से मुझे आया था। लेकिन एक अजीब बात है कि यह सपना मुझे १९४६ में आया था। पर यह मन की जिस हालत में से गुजरता है, वह हालत मैंने अपनी जिन्दगी में १९६० में देखी। यह जिन्दगी के हादसे से ग्यारह बरस पहले किस तरह आ गया, यह मैं आज तक नहीं समझ सकी।

मेरा नॉवल 'एक सवाल' १९५९ में प्रकाशित हुआ था, जिसका पात्र चित्रकार जगदीप अपनी महबूब को नहीं पा सकता। पर अपनी कला के द्वारा शोहरत जरूर पा लेता है। वह उदास है, और एक रात जलपरी-सी शोहरत, सीप सरीखे बदन वाली, और पानी की बूंदों की पोशाक पहने, उसके सपने में आकर उससे बातें करती है…यह सपना भी मेरा निजी सपना था, जो मैंने अपने पात्र जगदीप का सपना लिखा था। खैर, उन दिनों मेरी और जगदीप के मन की हालत एक जैसी थी। जो उदासी उसको अपना नसीब लगती थी, वही मुझे।

जानती हूं, कई बार मैं अपने पात्रों से इस तरह एकप्राण हो जाती कि मेरा चेहरा उनके चेहरों में समा जाता है। देविन्दर ने १९६६ में मेरी कविता पर एक किताब लिखी थी 'कलम दा भेत', उसने कई पन्नों में मे

पूछे थे, जो उसकी किताब का हिस्सा बने थे। तब एक सवाल का जवाब देते हुए मैंने कहा था, "'डॉक्टर देव' नॉवल की ममता, 'घोंसला' नॉवल की नीना, 'एक सवाल' नॉवल की रेखा, मैं खुद चाहती थी जिन्दा रहें, पर वे जैसे जीने के लिए बनी ही नहीं थीं। वे दोनों तरफ से शमा की तरह लट-लट जलीं और फिर खत्म हो गईं।"

यह मेरे पात्र, जानती हूं मेरी कल्पना होते हैं, पर समय पाकर यह मेरे लिए भी हकीकत बन जाते हैं। इतनी कि यदि कहीं देखूं तो झट पहचान लूं। उन दिनों मुझे एक सपना आया, जिसमें मेरे 'घोंसला' नॉवल की नीना मेरे सपने में आकर मुझसे लड़ी थी। वह सपना मैंने देविन्दर को सुनाया था, और उसने अपनी किताब में दर्ज किया था। वह सपना था: "एक दिन नीना ने मुझसे यही बात पूछी थी। पतले-से, सांवले-से, कोमल-से मुंह वाली नीना। बड़ी बिलखकर पूछने लगी, 'मेरी कोई उम्र थी इन दुखों के लिए? मेरा कोई मुंह था इन आंसुओं के लिए? तूने मेरी कहानी ऐसी क्यों गढ़ दी? मैं रोती रहूं, तुझे अच्छा लगता है? यह तूने मेरे साथ क्या किया?'" और मैंने देविन्दर को कहा था, "मैं नीना को क्या जवाब देती, मैं तुम्हें भी क्या जवाब दूं। मुझे तो ऐसा लगता है कि शायद मेरी होनी मेरे पात्रों को लग जाती है।"

सो पता नहीं लगता मेरे पात्र किस समय मेरे दर्द को अपने जिम्मे ले लेते हैं। और पता नहीं किस समय अपना दर्द मेरी हथेली पर रख जाते हैं। मेरा नॉवल 'जलावतन' १९७० में छपा था। उसमें एक नामुराद आशिक सपने में सूरज से टूटकर धरती पर गिरी हुई किरणों को चुनता है—गर्म और चमकती। कोई किरण गड्ढे में गिरी होती है, कोई पहाड़ी ढलान पर, वह अकेला जंगल में जाकर इन किरणों को चुनता है। यह भी जानता है—ये किरणें इंसान की सोचें हैं, उसके सपने, जो रोज झड़ते हैं, और इनको अब जमीन से उठाने पर कुछ नहीं बनेगा। ये किरणें हाथ में लेने से तिनकों की तरह हो जाती हैं, पर वह किरणें चुनता है…।

यह नॉवल लिखते हुए मेरे मन की हालत नॉवल के पात्र जैसी नहीं थी, पर यह सपना मुझे आया था, शायद मेरे पात्र की जगह आया था।

अपना नया नॉवल 'तेरहवां सूरज' मैंने १९७७ में लिखा था। लिख रही

थी—जब एक रात सपना आया कि मेज़ पर लिखकर रखा कागज़ हवा से उड़कर मेज़ के नीचे गिर पड़ा है। मैं जब झुककर कागज़ को उठाती हूं तो देखती हूं—वह खाली है। लिखा हुआ कागज़ कोरा कैसे हो गया? हैरान होती हूं, और फिर फीकी-सी रोशनी में देखती हूं—कागज़ पर लिखे अक्षर नीचे, मेज़ के नीचे, गिरे हुए हैं। काले बीजों की तरह। मैं एक-एक अक्षर को दायें हाथ से उठाकर बायें हाथ की हथेली पर रखे जाती हू। फिर देखती हूं—बायें हाथ की हथेली गीली मिट्टी की तरह हो गई है। मैं दायें हाथ की उंगली से बीजों सरीखे अक्षरों को हथेली में गडाकर देखती हू। वे मास में ऐसे उतर जाते हैं जैसे मिट्टी में दब गए हों। फिर बायीं हथेली पर बचे हुए अक्षर मैं दायीं हथेली पर पलटती हूं। वह हथेली भी मिट्टी की हो जाती है, और जब बायें हाथ की उंगली से उन्हें दबाकर देखती हूं, तो वे सब दाईं हथेली में बीजों की तरह उतर जाते हैं। घबराकर दोनों हाथों को झाड़ती हू, लगता है मिट्टी के हाथ टूटकर नीचे गिर पड़ेंगे। पर हाथ उसी तरह रहते हैं। मैं सूंघकर देखती हूं—दोनों हाथों में से भीगी मिट्टी की सुगन्ध आती है। और फिर देखती हूं—दोनों हथेलियों पर छोटे-छोटे लाल रंग के फूल उग आए हैं। सूंघकर देखती हूं—दोनों हाथों से फूलों की महक आ रही है···

यह सपना सारे का सारा मैंने नॉवल के पात्र संजय का सपना लिख दिया। अजीब संयोग था कि वह मेरा पात्र भी कहानियां लिखने वाला पात्र था। इसलिए उसे यह सपना आना उसी तरह स्वाभाविक था जैसे मुझे।

एक भयानक सपना

मेरे बाप की मौत १९४६ में हुई थी, मेरी नजरों से बहुत दूर बिहार में, जहां उन्होंने कुछ ज़मीन खरीदकर रहनी जिन्दगी के लिए एक सपना उभारना चाहा था। पर दिसम्बर १९७५ को मुझे उनकी मौत का एक भयानक सपना आया, जो २८ दिसम्बर के खत में मैंने बम्बई गए हुए इमरोज़ को लिखा था कि रात हमारा दरवाज़ा ज़ोर से किसीने खटखटाया। कुछ लोग आए (सरकारी क़िस्म के लोग) और वह मेरे दारजी को पकड़कर ले गए, और फिर सुबह पता लगा कि उन्होंने दारजी को वहीं ले जाकर गोली से मार दिया

यह दरवाज़ा खटखटाए जाने वाली रात भी सपने की थी, और

मार देने वाली खवर की सुवह भी सपने की। अचानक यह सपना क्यों आया, मैं इसका कारण कितनी देर तक सोचती रही। अचेतन मन में पड़ी हुई एक शंका भी हो सकती है कि दारजी की मौत शायद कुदरती नहीं थी, क्योंकि जो ज़मीन उन्होंने खरीदी थी, वह मेरी मौसी के लड़के ने जाली दस्तखत करके वेच दी थी, और उन पैसों के वारे में उसने हमेशा के लिए एक चुप धार ली थी। पर एक कारण और भी हो सकता है कि उन दिनों मैं सोल्ज़ेनित्सिन की किताव 'गुलाग' पढ़ रही थी, जिसमें अकसर रातों को लोगों के दरवाज़े खड़कते थे, और वड़े मासूम लोग या तो वीस-वीस वरसों के लिए जेल की कोठरियों में डाल दिए जाते थे या उसी रात गोलियों से मार दिए जाते थे। ये दोनों दलीलें वारी-वारी से मेरे अंदर उठती रहीं। एक यह कि लाखों मासूम लोगों की मौत मेरे दिल को इतना हिला गई है कि उनकी मौत मुझे अपने वाप की मौत जैसी लग रही है। और दूसरी दलील यह थी कि क्या पता मेरे वाप की मौत एक राज़ हो, जिसे मैंने आज तक न जाना हो, और यह सपना उसी राज की ओर एक इशारा हो···

मैं कई दिन तक इस सपने से परेशान रही थी। मेरी १९७७ की अप्रकाशित डायरी में जो सपने लिखे हुए हैं, वे ये हैं :

"आज रात फिर सपना आया कि मेरे दोनों वच्चे छोटी उम्र के हैं। पिछले एक-दो वरसों से कभी-कभी ऐसा ही सपना आने लग पड़ा है, जिसमें मैं आज के जवान वच्चों को, तीन-चार साल, या छः-सात साल की उम्र के देखती हूं। शायद जवान हुए वच्चे मां की ज़रूरत से आज़ाद होते हैं, और फिर मां उसी तरह अपने-आपको चाहे जाने की हैसियत में देखना चाहती है, इसलिए सपने में वह इस इच्छा की पूर्ति करती है। मां लफ्ज़ का मकसद जव पूरा हो चुका होता है, उसके वाद भी···"

१४-८-७७

"आज वित्ता-भर रात रह गई है, मैं एक अजीव सपने से चौंककर जाग पड़ी हूं—देखा था कि एक वहुत वड़ी उम्र का आदमी मेरे पास आकर मुझे एक मकान खरीदने के लिए कह रहा है। मैं कहती हूं, 'मेरे पास घर है, मुझे और नहीं चाहिए', फिर कुछ आंधी-सी आती है, उसकी जेव में से कुछ कागज़

निकलकर हवा में उड़ जाते हैं, पर फिर उड़ते, गिरते कागज़ मिल जाते हैं, और वह मुझे पढ़ने के लिए देता है। एक कागज़ पढ़ती हूं, जिसमें एक घटना दुहराई हुई है—पुरानी ऐतिहासिक घटना की तरह, कि एक छोटी-सी बच्ची थी जो खेलती-खेलती 'रसीदी टिकट' को पकड़कर उसके अक्षरों को जीभ से चाटने लग पड़ी थी, और अक्षरों की स्याही का ज़हर उसे चढ़ गया था। वह मर गई थी···

इस किसी पुरातन घटना की बात सुनकर, मैं सपने में कांप गई, और चौंककर जाग पड़ी···रात अब भी बाकी है, इसलिए इमरोज को नहीं जगाया। खुद ही फ्रायड की तरह इस सपने को एनेलाइज़ कर रही हूं—कि कल शाम नेशनल बुक शॉप वाले राजेन्द्र ने आकर कहा था कि मैंने गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के किसी व्यक्ति से बात की थी, वह कह रहा था, 'हम 'रसीदी टिकट' के बारे में फिर कुछ नहीं कहेंगे। अगर वह किताब की कुछ पंक्तियों पर चेपियां लगा दे और कहें कि वे पंक्तियां फिर 'रसीदी टिकट' में नहीं छपेंगी।' यही शायद अपने अक्षरों को चाटने वाली भयानकता थी, जिससे यह सपना आया।

ये पंक्तियां जब लिखी थीं, मन की कैसी पाकीज़गी और मासूमियत से लिखी थीं। और अब जैसे कहा जा रहा है कि उन अक्षरों को वापस ले लूं, कागज़ पर से मिटा दूं। यही अक्षरों को चाटने वाला कर्म है और जिसके बाद शायद मन की मासूमियत हमेशा के लिए मर जाएगी।

सपने वाला वह बुजुर्ग शायद समय का वह इतिहासकार है, जिसका लिखा इतिहास कभी नहीं छपता। वह सिर्फ सोच के टुकड़े बनकर हवा में उड़ता रहता है। और कभी-कभी ऐसे कागज़ का पुर्ज़ा किसीके हाथ लग जाता है, जिसमें वह किसी अहसास की मौत की खबर पढ़ता है···"

१३-६-१९७७

"एक पहर रात बाकी है।

आज रात बड़ा ही अजीब सपना आया। कोई एक पुरानी-सी कार आई, जिसमें पता नहीं कौन-कौन था, पर मुझे यह एक पूरा अहसास हुआ कि उस कार में जो लोग आए हैं, वे मेरा कोई नुकसान करने आए हैं। क्या नुकसान? किस तरह का? कोई पता नहीं। पर वे किसी दुश्मनी पर तुले हुए हैं, सिर्फ इतना लगा। फिर एक इलहाम जैसा खयाल आया—अगर मैं इस कार के गिर्द

एक लकीर खींच दूं, एक घेरे की तरह, तो वे लोग मेरा कुछ नहीं कर सकेंगे। मैंने जल्दी से एक गहरी लकीर कार के चौगिर्द खींच दी। और मेरे देखते-देखते वह कार उन लोगों समेत धरती में धंस गई। और सामने सिर्फ खाली जमीन थी···चौंककर जागी तो यह सपना इमरोज को सुनाया, पर ऐसा सपना जिन्दगी में पहली बार आया है। यह न इमरोज़ की समझ में आ रहा है, न मेरी···"

२४ सितम्बर, १९७७

"कोई दस दिनों से रोज़ रात को सोते समय जब बत्ती बन्द करती हूं, आंखें मूंदती हूं, आंखों के समक्ष किसी पर्वत की ओट से सूरज चढ़ने का समय फैल जाता है। देखती हूं—पता नहीं कहां—एक हरी घाटी है, सामने दूर नदी है, उसके पार पहाड़ों की एक कतार है और उनकी ओट से चढ़ते सूरज की लाली फैल रही है···

आज अजीब इत्तफाक हुआ, मैंने और इमरोज़ ने फिल्म देखी, 'वन फ्लीट ओवर द कुकूज़ नेस्ट'—एक भयानक खूबसूरत फिल्म। और उसका पहला दृश्य बिलकुल वही था, जो पिछले दस दिन से रात सोते समय मुझे दिखता है···मैं हैरान उस दृश्य को सामने स्क्रीन पर देखती रह गई···"

२९-९-७७

"कभी-कभी एक अजीब सपना आता है—आज रात फिर आया कि मेरी गोद में एक नवजात बच्ची है, और जब मैं उसे कपड़े में लपेटकर चारपाई पर सुलाने लगती हूं, तो वह मुझसे बात करने लग पड़ती है। सपने में भी हमेशा हैरान होती हूं कि यह नवजात बच्चा बातें कैसे कर सकता है ? और जब आंख खुलती है तो तब भी इस सपने पर हैरान रह जाती हूं। यह सपना कभी-कभार आता है, पर आता जरूर है। पता नहीं यह मेरी कलम का चिह्न है कि कुछ और ?"

२८-११-७७

"रात जिन्दगी का सबसे अजीब सपना आया। पता नहीं अचेतन मन का

कैसा जादू था कि सपने के तार मेरे चारों ओर लपेटे गए। देखा, एक पहाड़ी-सा इलाका है, जहां पूरे इलाके में मेरी नज़्मों की और मेरी दीवानगी की शोहरत एक लोककथा की तरह फैली हुई है। वहीं मैं एक दिन एक नदी के किनारे खड़ी हुई थी कि नाव में बैठकर इलाके का राजा आता है। मुझे देखकर राजा के दरबारी नाव को किनारे पर बांध देते हैं, राजा को बताते हैं, 'राजाजी! आप जिसकी नज़्में सुनकर, उसे ढूंढने आए हो, वह यही है···' राजा नाव में से उतरता है। कहता है, 'तेरी नज़्में मेरे महल में भी गूंज रही हैं। मेरे मन में भी···'

फिर मैं भी हैरान होकर उसकी ओर देखती हूं, वह भी। उसे याद आता है कि बहुत बरस हुए, शायद बीस बरस, जब मेरा उसके साथ ब्याह हुआ था, मैं उसके महल में उसकी रानी थी। पर वह ऐशोइशरत में इतना खो गया था कि मुझे भूल गया था···

अब वह मेरी ओर हाथ बढ़ाता है, कहता है, 'मैं तुझे, सिर्फ तुझे प्यार करता हूं। तेरा हुस्न मैंने पहचाना नहीं था, अब मेरे महल में सिर्फ तू चाहिए···'

मैं पीछे हटती हूं, कहती हूं, 'नहीं, अब नहीं···'

देखती हूं—दरबारी मेरे सामने हाथ जोड़ते हैं। राजा की आंखों में पश्चात्ताप का पानी आ जाता है, पर मैं दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करती दूर जंगल की ओर चली जाती हूं···

सपने में राजा का नाम मुझे पूरी तरह याद था पर जागकर सिर्फ इतना याद रह गया है कि उसका नाम 'र' अक्षर से शुरू होता था। पूरा नाम भूल गया है। मुझे इस सपने का अर्थ नहीं मिल रहा। यह सपना क्या है, इसका क्या एनैलिसिस है। जी करता है कि जुंग जिंदा हो तो उससे इसके अर्थ पूछूं।

आज जुंग की किताब 'मेम्वायर्ज़, ड्रीम्ज़, रिफ्लेक्शज़' पढ़ रही हूं। जुंग को भी अजीबो-गरीब सपने आते थे, जिन्हें वह कई बार बरसों तक नहीं समझ सकता था। फिर किसी दिन अपने-आप ही उनके अर्थ उसके अंदर से बोल पड़ते थे। वह फ्रायड की तरह सपनों को गढ़ी हुई थ्योरियों में नहीं बांधता था। जो ख्याल उसके चेतन मन से धीरे-धीरे सपनों के गिर्द जुड़ते थे, उनमें से ही वह सपनों के अर्थ पहचानता था···

यही—मन में से स्वाभाविक-से उठते ख्यालों के साथ मैं इस अपने सपने

को समझने की कोशिश कर रही हूं—वह राजा कौन था ? क्या पिछले किसी जन्म की कोई परछाई मेरे सामने उघड़ रही है ? क्या किसी जन्म में यही मेरा इमरोज़ किसी इलाके का राजा था, जिसने मुझे महल में ले जाकर भी विसरा दिया था ? क्या पहले किसी जन्म में भी मैं शायर थी—दीवानी और जंगलों में घूमती ? और जब राजा को मेरी प्यास लगी, क्या उसी जन्म की प्यास से वह इस जन्म में इमरोज़ बना ? उसी प्यास को बुझाने के लिए ?

इमरोज को मिलने से पहले यह ज़िन्दगी मेरे लिए जंगल थी। एक भटकन थी। वह जब मिला, सचमुच लगा था—कोई सदियों की पहचान है, उसके साथ सदियों का रिश्ता है…"

पता नहीं, यह सपना क्या है ? शायद किसी बीते जन्म की हकीकत है। या मेरे आज के कहानियां लिखने वाले चेतन मन ने सपने के तार पकड़कर योंही यह कहानी गढ़ ली है…

४ दिसम्बर, ७७, सवेरे चार बजे

"आज सपने में मैं अपने छोटे-से कातिक से बातें करती रही कि अच्छाई इंसान की सोच का एक बड़ा खूबसूरत पहलू है, कि वह उठकर ज़मीन में फलों और फूलों के बीजों की तरह कुछ बोने लग पड़ा। मैं हैरान हुई तो कहने लगा, 'अम्माजी ! मैं अच्छाई बो रहा हूं, फिर उसके बहुत-से पौधे उगेंगे।' मैं हंसती हूं पर फिर पानी लेकर उसकी बोई हुई मिट्टी को पानी देने लगती हूं। यही पानी दे रही होती हूं कि उस समय आंख खुल जाती है…

यह सपने में छः बरसों का कातिक, और करीबन साठ बरसों की मैं, मिल कर किस बहिश्त का बाग लगा रहे हैं, कुछ समझ में नहीं आता…"

७ दिसम्बर, १९७७, सुबह चार बजे

"रात एक भयानक सपना आया—कहीं कोई कैबिन्ज़-सी बनी हुई हैं। जिस कैबिन में मैं अकेली रहती हूं, उसके बराबर की कैबिन में जर्मन सिपाही रहते हैं। हर कैबिन का दरवाज़ा आधा लकड़ी का है, आधा ऊपर का हिस्सा शीशे का, जिसमें से बराबर की कैबिन का ऊपर का हिस्सा दिखता है। देखती हूं, पास के कैबिन में जर्मन सिपाही दो आदमियों को इस तरह मार रहे थे कि

होती है कि नहीं, पर मुझे सपने में भी हैरानी होती है। अपने ही फिकरे से, कि मैंने कैसे हर लेखक का जन्म एक गांव से जोड़ दिया है, और उसका नाम भी ऐसा रखा है—कलम का गांव, जैसे वह सचमुच धरती का एक खास अलग टुकड़ा होता है···और इस अचम्भे की झनझनाहट से मैं जाग जाती हूं।"

१६-१२-७७

जब इंसान का सारा ध्यान किसी खास काम में लगा हुआ हो तो उसके रातों के सपने भी कैसे उस काम से जुड़ जाते हैं—इस पक्ष से मैं अपने दो सपने खास तौर से दर्ज करना चाहती हूं, जो इस किताब पर काम करते हुए दो रातों को लगातार आए थे :

३१ दिसम्बर रात की बात है, मेरा बेटा घर की निचली मंज़िल में अपने ड्राइंग रूम में नये बरस का जश्न मना रहा था। उसके दोस्त शराब पी रहे थे। नाच रहे थे और म्यूज़िक की आवाज़ मुझे ऊपर भी काफी सुनाई दे रही थी। पर मैं आराम से सो गई, तो पहला सपना आया : कोई बहुत बड़ी इमारत है, जहां देखती हूं—इन्दिरा गांधी अकेली खड़ी हुई हैं, उसी तरह हसीन, नाज़ुक बदन और मुस्कराती-सी। पर देखती हूं, उनकी आंखों पर काले रेशम की पट्टी बंधी हुई है और वह हाथों से खाली जगह को ऐसे टटोल रही हैं, जैसे छुपन-छुपाई की बाज़ी उनके सिर आई हो। उनके साथ छुपन-छुपाई खेलने वाले कौन लोग हैं, वे नहीं दिखते। सोचती हूं, वे सब कहीं छिपे होंगे। मैं सपने में इस खेल की दर्शक मात्र हूं। जहां सामने सिर्फ इन्दिरा गांधी दिख रही हैं—और कोई नहीं···

यही सपना आ रहा था जिस वक्त मेरे बेटे ने ऊपर मेरे कमरे में आकर आवाज़ें दीं, "ममी-ममी, नया साल मुबारिक। देखो, सोनी भी आपको साल मुबारक कहने आई है।" मैं जागती हूं, कमरे की बत्ती जलाती हूं, बेटे को भी प्यार से साल मुबारिक कहती हूं, और उसकी दोस्त लड़कियों को भी। बड़ा अच्छा लगता है कि बच्चे मुझे जगाकर साल मुबारिक कहने आए हैं···

वे फिर नीचे पार्टी में चले गए। मैं उठकर इमरोज़ के कमरे में गई, उ सोए हुए के माथे पर चूमकर साल मुबारिक कहा, पर वह नींद में ही साल मुब रिक कहकर फिर सो गया। मुझे अब नींद नहीं आ रही थी इसलिए चाय ब

प्याला बनाया, पिया, एक सिगरेट भी पिया, और फिर कोई किताब पढ़ते-पढ़ते पता नहीं किस वक्त सो गई। यह जब दूसरी बार सोई, तो सपना आया, किसी गांव में गई हूं, वहां एक अजनबी मुझे अपने अजीबो-गरीब सपने सुना रहा है। मैं कहती हूं, "मैं आजकल सपनों पर एक किताब लिख रही हूं, तेरे अजीब सपने हैं, पर मुझे किताब में सिर्फ लेखकों के सपने दर्ज करने हैं। आम लोगों के नहीं।" वह कहता है, "मैं मशहूर लेखक तो नहीं, पर ग्रामीण गीतों की मैंने पांच किताबें लिखी थीं।" मैं खुश होकर जवाब देती हूं, "फिर तो बात बन गई, मैं तेरे सपने भी अपनी किताब में दर्ज करूंगी। अच्छा फिर सुना! मैं कागज पर लिख लूं!" और ज्योंही लिखने के लिए कागज पकड़ती हूं, नींद खुल जाती है...

दूसरा सपना उससे अगली रात देखा था। देखा : "मैं अपने बाप के साथ किसी पहाड़ी की शिखर पर खड़ी हूं—जहां से नीचे को उतरती कई पहाड़ी डण्डियां हैं। एक पहाड़ी की पिछली डण्डी पर उतरती मैं कहती हूं—'इस डण्डी को लोग नहीं जानते, पर मैं पहचानती हूं, यह बहुत जल्दी, निर्जन की ओर से होती हुई नीचे बड़ी सड़क पर पहुंच जाएगी। मैंने एक बार दोपहर में यह पगडण्डी ढूंढी थी। अब शाम का वक्त है, वहां अंधेरा हो जाएगा, पर कोई डर नहीं, आप साथ हैं!' और उस पगडण्डी पर से उतरते-उतरते सचमुच कुछ देर बाद दूर से ही बड़ी सड़क दिखने लगती है। रास्ते में अंधेरा जरूर हो जाता है, पर तसल्ली-सी होती है कि राह ठीक है। बस, अब जंगल खत्म होने वाला है... राह में कोई आदमी नहीं मिलता, सिर्फ एक जगह सींगों वाला एक जानवर दिखता है, बिलकुल पगडण्डी पर। मैं उससे कुछ डरती हूं, पर फिर जल्दी से उसके पास से गुजर जाती हूं। वह मुझे कुछ नहीं कहता...

फिर पता नहीं किस तरह हुआ—देखा कि मैं लाल पत्थरों के एक किले में फंस गई हूं। उसके अन्दर से बाहर निकलने की राह ढूंढती, मैं कई मंजिल नीचे उतरती हूं। किले में और कोई नहीं, बस चारों तरफ लाल खूबसूरत पत्थरों के बने हुए कई कमरे हैं, कई बरामदे, और कई गोल खम्भे। फिर एक बरामदे में अचानक मुझे एक आदमी मिलता है, जिससे मैं राह पूछती हूं। वह साधारण-सा पतला-सा आदमी है, पर उसने वर्दी-सी पहन रखी है, जैसे वह किले का

पहरेदार हो। पर वह कुछ डाकिया-सा भी लगता है। वह पास आकर अचानक मेरे होंठ चूम लेता है। मैं घबराकर कहती हूं, 'नहीं···नहीं।' और जल्दी से अकेली वहां से चल पड़ती हूं। वह हंस पड़ता है, पर मेरा पीछा नहीं करता। पर आगे जाकर मुझे फिर राह नहीं मिलती। वहां एक और आदमी दिखता है। उसी तरह के कपड़े। मैं उससे राह पूछती हूं। वह कहता है, 'तुझे फिर पिछले वरामदे में से जाना पड़ेगा।' मैं कहती हूं, 'नहीं, मैं वहां नहीं जाऊंगी, वहां जो पहरेदार है, मैं उसके पास नहीं जाऊंगी।' यह दूसरा पहरेदार मेरे साथ-साथ चलता हुआ कहता है, 'अच्छा अगर वापस वहां नहीं जाना है तो दीवार के वाहर नीचे की ओर छलांग मारनी पड़ेगी।' वह आगे होकर दीवार के वाहर नीचे की ओर लटक जाता है। वहां कुछ तार-से हैं, जिनको हाथ डालकर मैं भी वड़ी आसानी से दीवार से वाहर की ओर लटककर नीचे उतर जाती हूं। जिस्म को कोई खरोंच नहीं लगती, वस तारों के सहारे नीचे की मंज़िल पर पहुंच जाती हूं। पर नीचे की मंज़िल में भी वाहर जाने की राह नहीं मिलती। वह मंज़िल भी किले का ही कोई हिस्सा है। वह कहता है, 'वस एक मंज़िल नीचे और, फिर वाहर जाने का रास्ता मिल जाएगा।' वह मेरे साथ चलता है, वड़ा भला-सा आदमी लगता है। पूछता है, 'जो पहरेदार तुझे पहले मिला था, उसने तुझे कुछ कहा था?' मैं हंस-सा देती हूं, पर उसे कुछ नहीं वताती। सिर्फ मन में घबराती हूं—वह कहीं फिर न मिल जाए। इतने में चलते-चलते वाहर निकलने वाला दरवाज़ा दिख पड़ता है—छोटा-सा, पुराना-सा। और उसमें से वाहर की रोशनी दिख रही है। मैं मन में सुख की सांस लेती हूं। और अपने-आपको महफ़ूज़ समझकर सोचती हूं—ये पहरेदार असल में कौन हैं? और खुद ही वड़ी स्पष्ट होकर समझ लेती हूं—पहला फ्रायड था। दूसरा जुंग है···और इस ख्याल के साथ ही मेरी नींद खुल जाती है···"

२ जनवरी, १९७८, रात ३ वजे

अपने इन सपनों का जो विश्लेषण सहज मन से मुझे दिखता है—लगता है पहले सपने का पहला हिस्सा (आंखों पर काले रेशम की पट्टी वांधकर इंदिरा गांधी का छुपन-छुपाई खेलने वाला) आज की राजनैतिक खवरों के प्रभाव के नीचे है। और दूसरा हिस्सा (किसी गांव में जाकर किसीसे उसके सपने सुनने वाला)

सीधा इस किताब की उस प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है जो मैं अपने परिचित लेखकों के सपने एकत्र करना चाहती हूं। हां, दूसरा सपना अपने ही अचेतन मन में उतरकर उसमें से बाहर की राह और बाहर की रोशनी ढूंढने का एक गहरा यत्न लगता है—जिसमें फ्रायड और जुंग दो रहनुमा बनकर मुझे मिलते हैं। चेतन मन से फ्रायड के बारे में मैंने जो भी पढ़ा है, सेक्स को जरूरत से ज्यादा अहमियत देने के बारे में, मेरा ख्याल है वही सोच सपने में प्रत्यक्ष होती है। उसका तसव्वुर मेरे सपने में सेक्सी रुचियों से सम्बन्धित है, और जुंग का उन खोजी रुचियों में, जो रुचियां उलार होकर हर चीज को सेक्स से नहीं जोड़ती। वह मेरे सपने में सिर्फ एक मददगार के रूप में है।

चाहती थी—लेखकों, चित्रकारों के सपने में इमरोज़ के सपने जरूर दर्ज करूं, पर नहीं कर सकी थी। उसके लफ्ज़ों में "अजीब बात है। मुझे कोई सपना आता ही नहीं। शायद आता हो पर जागकर मुझे कभी नहीं लगा कि आज कोई सपना देखा था।" पर यह किताब जैसे-जैसे लिखती रही, साथ ही साथ उसे सुनाती रही। इस सम्बन्ध में और जितनी भी किताबें पढ़ीं, उनका जिक्र भी रोज अकसर होता था, और मेरा ख्याल है जरूर महीनों चलते इस जिक्र का असर हुआ होगा कि चार जनवरी की सुबह को इमरोज़ ने चाय का प्याला देकर मुझे सोते से जगाया और कहा, "अजीब बात है, आज रात मुझे दो सपने आए...।"

और उसने जो सपने सुनाए, वे ये हैं : "आज मैंने बत्तीस बरसों के बाद पहली बार सपने में लाहौर का वह आर्ट स्कूल देखा, जहां मैं पढ़ा था। उसका होस्टल एक पुरानी इमारत में था, जिसके नीचे के हिस्से में प्रिंसिपल रहता था। और ऊपर के हिस्से में लड़कों का होस्टल था। प्रिंसिपल मुसलमान था। इसलिए उसके घर की औरतें सख्त पर्दे में रहती थीं, और हम होस्टल में रहते लड़के अपनी खिड़कियों में से नीचे नहीं झांक सकते थे। सख्त मनाही थी। गुस्सा आता था कि यह पर्दों में लिपटा हुआ घर, जवान लड़कों के सामने हर समय क्यों रखा हुआ है। प्रिंसिपल को अपनी रिहायश कहीं और रखनी चाहिए। लड़कों में कई एक मुसलमान थे, पर बाकी नहीं थे, उन्हें पर्दे की रवायत से कोई लगाव नहीं था। उनके सामने हर समय एक वर्जित चीज

अहसास रहता था। और साथ ही सिर पर एक सख्त कानून जैसा हाकिमी लहजा लटकता रहता कि कोई लड़का खिड़की में से नीचे नहीं देख सकता। पर आज रात मैंने सपने में देखा कि ऊपर की मंज़िल साबुत है, पर निचली मंज़िल सारी ढह चुकी है—वहां कोई घर नहीं। वहां पर्दों में लिपटी कोई चूड़ियों की खनक नहीं। वहां सिर्फ कुछ खंडहर हैं, कुछ उखड़ी-पुखड़ी घास, और एक जगह कुछ सब्ज़ी-सी बोई हुई है। उसी वीराने में मैंने अकेले घूमते प्रिंसिपल को देखा, उसने भी मुझे पहचाना, और याद किया कि हां, फलाने साल में तुम यहां पढ़ते थे'''और कोई बातचीत नहीं हुई। मैं सिर्फ हैरान उस निचली मंज़िल की वीरानगी को देखता रहा'''।

फिर उसी घड़ी लाहौर की जगह मैंने देखा—यह बम्बई शहर है। वही जगह, जहां मैं कभी काम ढूंढ़ने के लिए विश्वनाथ भिड़े नाम के आर्टिस्ट के पास गया था, और उसका असिस्टैण्ट होकर रहा था। फिर कुछ सालों बाद जब मैं अकेला इण्डिपेण्डेण्ट होकर काम करने लगा तो महबूब प्रोडक्शन के कैमरामैन फरदून ईरानी ने फिल्म 'अमर' के लिए मुझे वनशीट पोस्टर बनाने के लिए कहा। मैंने पोस्टर बनाया, और वह चुना गया। मुझे नहीं पता था कि भिड़े ने भी पोस्टर बनाया था। मेरा पोस्टर चुन लिया गया तो उसका रिजेक्ट कर दिया गया। वास्तव में वही आर्टिस्ट कई बरसों से उस प्रोडक्शन का काम कर रहा था, यह मुझे पीछे पता लगा जब उसका रवैया मुझसे बदल गया। बाद में उसी प्रोडक्शन ने मुझे छः शीटर बनाने को कहा, तो मैंने एक शर्त रखी—'आप या तो उस आर्टिस्ट से बनवाओ या सिर्फ मुझसे। यह खामखाह का मुकाबला मुझे पसन्द नहीं। आखिर आपको एक का काम चुनना है, दूसरे का काम बेकार जाएगा। मैं नहीं चाहता किसीका भी काम बेकार जाए।' वह नहीं माने, कहने लगे—'हम दोनों से बनवाकर देखेंगे।' मैंने पोस्टर बनाने से इनकार कर दिया। यह बात बहुत देर बाद उस आर्टिस्ट को पता लगी तो उसका रवैया मेरे साथ फिर अच्छा हो गया। शायद तभी का कोई दर्द मेरे मन में पड़ा हुआ था, जब पहली बार उसका रवैया मुझसे बदला था, कि रात सपने में मैं उससे मिला, तो वह मुझे प्यार से मिला। एक समय आया था कि जब वह आर्टिस्ट ज़्यादा खुशहाल नहीं रहा था, पर सपने में मैंने उसका बढ़िया घर देखा, बढ़िया स्टूडियो। और वह प्यार से बातें करता हुआ मुझे चाय पिलाने के लिए एक

चाय की दुकान पर ले गया। वहां दुकान पर एक औरत तेल की कड़ाई में कुछ भजिया-सा तल रही थी। आर्टिस्ट ने उसे एक भजिया की प्लेट भी देने को कहा। और मैंने देखा—वह गर्म कड़ाही में से पोनी से भजिया निकालने के बजाय, हाथ से निकाल रही है। मैं हैरान होता हूं कि उसकी उंगलियां मास की हैं कि लोहे की जो गर्म तेल से जलती नहीं'''इसी हैरानी में मेरी नींद खुल गई'''।"

इमरोज के इन सपनों के बहुत-से हिस्से का विश्लेषण मुझे स्पष्ट-सा लगता है—कि जवानी के प्रारम्भिक बरसों में अपने ही कमरे की खिड़की से नीचे न देखने का जो सख्त हुक्म था, उसका रोप उसके मन में तब का कहीं पड़ा हुआ था, जिस रोप के कारण अब उसे निचली मंजिल की आबादी एक वीरानी नज़र आई। दूसरे सपने का भी पहला हिस्सा बड़ा स्पष्ट लगता है कि जिस आर्टिस्ट ने उसे बम्बई जैसे शहर में पहला काम दिया था, उसकी किसी तरह की भी नाराजगी उसे कबूल नहीं थी। उसके रवैये में जो फिर प्यार और आदर शामिल हुआ, उसने सपने में भी उसकी तसदीक देखी। सिर्फ दूसरे सपने का अन्तिम भाग—गर्म तेल में से हाथ से भजिया निकालने वाला—विश्लेषण मांगता है। उसकी गहराई में कोई मनोवैज्ञानिक ही जा सकता है, पर मुझे जो सहज स्वाभाविक अर्थ दिखते हैं, वह कह सकती हूं कि यह गर्म तेल कला की तपस्या लगता है, जिसमें से किसी उच्च कलाकृति को हासिल करने के लिए, कलाकार अपने हाथ उसमें डुबोता है, हाथ जलते नहीं। पर हाथों को गर्म तेल में डालना—एक साधना का, एक जुर्रत का, और एक विश्वास का सूचक है, जो इमरोज के अचेत मन से जुड़ा हुआ है—उसके अपने ऊपर अपने विश्वास से, और कला के प्रति उसकी आस्था से।

इमरोज मेरे इस विश्लेषण से पूर्णतया सहमत है, सिर्फ कह रहा है, "उस आर्टिस्ट का कोई निरादर मुझे इसलिए नहीं अखरता लगा था कि उसने मुझे पहला काम दिया था, और उसका आदर मुझे अपना फर्ज लगा था। उसकी जगह कोई और आर्टिस्ट होता तो भी मैं ऐसे ही महसूस करता। मैं किसी आर्टिस्ट की अवहेलना नहीं सह सकता।"

मानवीय मन का अध्ययन कभी मनोविज्ञान के विशेषज्ञों को करना है, यह

क्षेत्र उनका है, पर मैं उन आने वाले वक्तों के मनोवैज्ञानिकों के लिए कुछ वह ज़मीन ज़रूर सामने रखना चाहती हूं, जिसपर खड़े होकर वे यह अध्ययन कर सकें !

कई जगह बिलकुल अजनबी, जो पहले हमारी वाकफियत का हिस्सा नहीं होती, वह क्यों अचानक हमारा हाथ पकड़कर खड़ी हो जाती है, यहां उनके कुछ उदाहरण दे रही हूं :

दुनिया का प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक सी० जी० जुंग अपने अफ्रीका के सफर का ज़िक्र करते हुए लिखता है, "रात स्याही की तरह काली हो गई, तो धीरे-धीरे ठण्ड पसर गई। मैं सो गया। जब सूरज की पहली किरण ने सुबह होने की ख़बर दी तो मैं जागा। उस वक्त गाड़ी धूल के लाल बादल में से गुज़र रही थी। उसने मोड़ काटा तो मैंने देखा—एक ऊंची चट्टान पर, अपने लम्बे भाले पर झुका एक पतला-सा काला लड़का अडोल खड़ा हुआ था और नीची जगह से गुज़रती गाड़ी को देख रहा था। यह दृश्य मुझपर जादू कर गया। यह मेरे लिए बिलकुल अजनबी था—मेरे अनुभव से परे, पर मुझमें एक तीखा जज़्बा जगा गया। लगा कि यह पल मैंने पहले भी देखा हुआ है, और इस दुनिया को मैं पहले भी जानता हूं—चाहे यह वक्त के फासले से बहुत दूर था। ऐसे, जैसे मैं अभी अपनी जवानी की धरती पर से लौटा होऊं, और इस गहरे रंग के बदन वाले लड़के को पहले भी देखा हुआ है, जो पांच हज़ार बरसों से यहां खड़ा मेरी इन्तज़ार कर रहा है···।"

१९६६ में मैं मास्को, जार्जिया और आर्मीनिया गई थी। वापस आकर अपना सफरनामा लिखा था जो और कई देशों के सफर को मिलाकर 'इक्कीस पत्तियों का गुलाब' नामक किताब में छपा था। उसमें आर्मीनिया का ज़िक्र करते यह ब्योरा आता है :

"तुम्हें कभी किसी खास देश के लोगों से कोई खास तरह का अपनापन लगा है ?" तबिलिसी में बरतानिया के एक लेखक ने मुझे पूछा था, और मैंने उसको जवाब दिया था, "इस तरह मुझे कभी किसी देश में नहीं लगा, पर कई बार कई किताबों के कई पात्रों से लगने लगता है।" और उस दिन आर्मीनिया के अजनबी शहर के वीरान पहलू में एक पहाड़ी पर बनी आर्क पर खड़े होकर मेरी आंखें इर्द-गिर्द का कुछ समेटकर अपने भीतर जोड़ने लग पड़ी थीं। पैरों में

[illegible]
[illegible] इसको [illegible]
के [illegible] [illegible] की तरह है, [illegible]
स्थान की तरह—चट्टानों के बीच भी है और [illegible]
पहाड़ों पर कोई पेड़ नहीं, उसके [illegible]
सिमटा हुआ लगता था। [illegible]-सी धूप उसके [illegible]
सी लगती थी…।

कुछ दूर पर सेरहनी [illegible] का एक चर्च है। [illegible]
से काट-तराशकर बनाया हुआ चर्च। [illegible]
मेला यहां जुड़ा हुआ था। छोटी-छोटी [illegible]
मोटे और लाल [illegible] [illegible]
चर्च के बाहर कई लोग [illegible]
हुए थे और कई लोग चर्च में [illegible]
घूमते प्रार्थना कर रहे थे। चर्च की [illegible]
सिक्के फेंकते, मन्नतें मांगते, और [illegible]
कुछ एक मेले की तरह दिख रही थी [illegible]
के झुके हुए माथे का [illegible]
पत्थर की एक गुफा में [illegible]
छिपकर [illegible] गुफा था, [illegible]
को लांघकर उस गुफा में आ सकती हूं?" [illegible]
छिपकर रह दिया था, [illegible]

काज़ान ज़ाकिस

पुरखों के जो चेहरे हमने कभी देखे नहीं होते, न उनकी सोच से हम वाकिफ होते हैं, न उनके कारोबार से हमारी कोई उन्सियत होती है, वह कैसे हमारे अन्दर जीते हैं, हमारे चेतन विचारों से वेपरवाह, और बड़ी हद तक उद्दण्ड, इसका एक बड़ा पुष्ट और भयानक वर्णन यूनान के लेखक निकोस काज़ान ज़ाकिस की आत्मकथा 'रिपोर्ट टु ग्रैको' में मिलता है :

"मैं अपने भीतर देखता हूं तो कांप-चौंक जाता हूं। मेरे दादा-परदादा खून के प्यासे समुद्री लुटेरे थे। जल में लुटेरे और थल में योद्धा। न खुदा से डरते न इंसान से। मेरे नाना-परनाना सीधे-सादे किसान थे जो एक विश्वास से धरती पर झुकते, धरती को गोड़ते और बोते, और फिर मौके पर धूप की और मेंह की इन्तजार करते। शाम के समय घरों के दरवाजों पर बैठे भगवान के आगे हाथ जोड़ते, और सब आशाएं भगवान के हवाले कर देते।

आग और मिट्टी। इन दोनों शक्तियों का मैं अपने अन्दर सन्तुलन खोजता था। मैंने अपना ध्येय यह समझा कि अपने अंगों में से पुरखों का अंधेरा निकालकर, जितना भी हो सके उजाले में बदल दूं।

इस ध्येय के लिए मैं तमाम उम्र जूझता रहा हूं। एक अंधेरा मेरे अन्दर हमेशा रहा है, और मेरी जद्दोजहद हमेशा चलती रही है। मेरे पुरखे मेरे अन्दर पता नहीं कितने गहरे गड़े हुए हैं। कभी ऊपर तैर आते हैं, कभी नीचे गहरे उतर जाते हैं। अथाह अंधेरे में उनकी पहचान मेरे लिए बड़ी मुश्किल है। पहली नज़र में यह चेहरा अपने वाप-भाई का-सा दिखता, पर गहरी नज़र से

देखूं तो मेरे अंगों में से कोई बालों से भरा हुआ, और बड़े-से जबड़े वाला, कोई उसका पुरखा निकल आता है जो भूख और प्यास से बौखलाया हो और जिसकी आंखों में खून उतर आया हो। यह पशु पुरखा मेरे हवाले किया गया है कि मैं उसे मनुष्य बनाऊं, और हो सके तो उससे भी कुछ अधिक। कितनी कठिन राह है—बन्दर से मनुष्य, मनुष्य से खुदा।

एक रात मैं एक दोस्त के साथ बर्फीली पहाड़ की चोटियों पर घूम रहा था। हमें राह भूल गई और रात उतर आई। कोई बादल नहीं था, चांद आसमान में लटका हुआ लगता था, बर्फ चमक रही थी, सलेटी-से रंग में। हम घाटी में उतरे। यह चुप असह थी। भगवान ने भी जरूर ऐसी ही चुप से घबराकर दुनिया बनाई होगी।

मेरा मन अजीब तरह से अलसा गया था, एक शक्ति की तरह मैं च[illegible] रहा था। दूर कहीं धीमी-सी रोशनी दिखी। [illegible] कोई बस्ती होगी [illegible] पल मेरे साथ कुछ अजीब-सा घटा। अब भी या[illegible], तो काप ज[illegible] मैं खड़ा हो गया। एक मुक्का तानकर गांव की [illegible] और चीख[illegible] "तुम सबको मार दूंगा।"

कहते हैं कि सूरज अपनी गति से चलता हुआ कभी किसी लड़की के गीत को सुनने के लिए रुक जाता है। अटल नियमों को हम भी वदल सकते हैं, सिर्फ अगर कभी अपने आंसू, हंसी, और गीतों के साथ हम नये नियम वनाने में समर्थ हो जाएं···

वे मेरे पुरखे—मरते थे, मारते थे, रूहों का आदर वे नहीं जानते थे, न अपनी रूहों का, न दूसरों की रूहों का। उनका वास्ता तो सिर्फ भूख और प्यास से था। गर्मियों में उनके धड़ नंगे और सर्दियों में खालों से ढके हुए। मेरे वाप के वाप का वाप, खास तौर पर मुझे अपने खून में जी रहा लगता है। नसों में धड़कता। उसका सारा सिर मुंडा हुआ होता था, माथे की ओर से सिर्फ पिछली तरफ एक लम्वी लट होती थी। वह अलजेरियन लुटेरों का साथी था। सारे समुद्र छान मारते थे। उजड़े टापुओं को उन्होंने अपने छुपने की जगह वनाया हुआ था। यहां से वे राह जाती किश्तियों को लूटते थे। ये किश्तियां हज जाने वाले मुसलमानों की हों या ईसाइयों की, इससे उन्हें कोई वास्ता नहीं होता था। वूढ़ों को मार देते, जवानों को गुलाम वना लेते, औरतों को घर रख लेते। उनकी मूंछों में से हर समय लहू की गन्ध आती थी।

एक वार उन्होंने पूर्व की ओर से आता हुआ गर्म मसाले का भरा जहाज लूटा। मेरे देश के वूढ़ों को अभी भी याद है कि सारे टापू में से कितने समय तक दालचीनी और जायफल की महक आती रही। मेरे वड़े-वूढ़ों ने वह लूट का माल दूर गांव के परिचितों को भी सौगात के तौर पर भेजा था।

कई ऐसे चिह्न मैंने अपने में देखे जिनपर पहले मैंने गौर नहीं किया, पर पीछे से पड़ताल की, तो उन चोर दरवाज़ों को पाया, जिनका सम्वन्ध मेरे भीतर घुसे हुए मेरे पुरखों से था।

ऊपर के हादसे को जव जाना नहीं था, कई वार हैरान होता था, कि मुझे हर समय अपने पास दालचीनी की टहनी और जायफल के वीज रखने क्यों अच्छे लगते थे। यह मैं सफर के समय भी रखता था, और लिखते समय अपनी मेज़ के सामने भी।

मैं यह सव कुछ अपने भीतर से निकालकर अपनी आत्मा का मुंह देखना चाहता था। यह मेरी वहुत वड़ी इच्छा थी।

मेरे पुरखे जहां जन्मे-पले थे, मैंने उसे सोचा। एक सुलतान ने जव करेट

को अरबों ने दसवीं सदी में फिर वापस लिया, तो जो अरब इस बरसो-खून में बच गए थे, वे वारवारी नामक गाव में बसाए गए। ऐसे ही एक गाव में मेरे पुरखो की जड़ें हैं। सबमे अरबी स्वभाव है—स्वाभिमानी, ज़िद्दी, मुहदर्ब, मूपी मिस्सी खाने वाले और मेलजोल से कतराते। उनका क्रोध और प्यार बरसों तक उनकी छाती में जमा रहता है। मुह से कुछ नहीं बोलने, पर अचानक यह क्रोध फट पड़ता है। उनके लिए ज़िन्दगी की इतनी अहमियत नहीं जितनी तीक्ष्ण जज्बे की। यहां तक कि वे जिस औरत से इश्क करते हैं, उसे जान से मार देते हैं ताकि वह उनपर कभी गलबा न पा ले।

मेरे भीतर कई आवाज़ें हैं जिनसे मुझे पुरखों तक जाने का रास्ता मिलता है। मैं खुशी से निहाल हो उठता हूं जब कहीं खजूर का पेड़ देख लूं। जैसे वतन को जा रहा होऊं। एक बार ऊंट की सवारी करता मैं अरब के रेगिस्तान में गया था—अनन्त रेत पसरी हुई देखी, दोपहर को पीली-सी, शाम के समय जामनी-सी। कहीं मनुष्य की जात नहीं थी। मैं मस्ती में बौरा गया।

एक बार मैं एक जगह रहा, एक ग्रीक गाव की एक कुटिया में। यह कुटिया पेड़ों से ढकी हुई थी। मैं अन्दर बैठा कई दिन तक नज़्में लिखता रहा। एक वासी यहां से गुजरता था। वह रोज मुझे दूध, उबले अण्डे और थोड़ी-सी रोटी दे जाता था। एक दिन शाम को मैंने अण्डों को लगाने के लिए नमक की पुड़िया खोली, तो थोड़ा-सा नमक ज़मीन पर गिर पड़ा। मैं जल्दी से घबराकर नमक का ज़र्रा-ज़र्रा ज़मीन पर से उठाता रहा। और फिर इस हरकत से मैं खुद ही घबरा गया कि तुच्छ-सी चीज को मैं ऐसे मिट्टी में से क्यों उठा रहा था?

कहीं बेकार ही आग जल रही हो या पानी गिर रहा हो तो मैं हड़बड़ाकर आग को बुझाने के लिए और पानी की टूटी को बन्द करने के लिए दौड़ पड़ता हूं। इन आदतों पर मैंने पहले ध्यान नहीं दिया था। कई बरस ऐसे होता रहा, पर फिर इनके बिखरे हुए धागे मेरे मन में जुड़ गए। नमक, आग और पानी। मरुस्थलों में बहुत बड़ी नियामत होती हैं। मेरे भीतर ज़रूर मेरा कोई पुरखा, बेकार जाते नमक, आग या पानी को देखकर मेरे अंगों में छलांग मारकर उनको बचाना चाहता होगा…"

अन्तिका

पितृपूजा मौत को अस्वीकृति देना है। और यह विश्वास और धारणा है कि मौत अन्त नहीं। यह सिर्फ किसीका अपने परिवार, कबीले या कौम से उस हद तक दूर चले जाना है, जहां आंखों, कानों की साधारण शक्ति नहीं पहुंच सकती। और दृश्य तथा अदृश्य के बीच में रिश्ते का बना रहना स्वाभाविक समझ लिया जाता है।

पितृपूजा वास्तव में ज़िन्दगी के अनन्त प्रवाह की और उसकी बेपनाह शक्ति की पूजा है। यह उस अदृश्य स्रोत से प्रारम्भ होती है, जिसका साक्षात् प्रमाण इंसान का अपना अस्तित्व है। इसलिए जो इंसान के अपने ज्ञान की सीमा से परे है, पर है, वह ईश्वर इंसान का आदि पितृ है। मौत-रहित।

और उसके बाद सूरज, पानी, आग और पवन जैसी कुदरत की वे बेपनाह शक्तियां इंसान के पितृ हैं, जिनका मेहरबान सलूक इंसान की ज़रूरत है। और उन शक्तियों के प्रतीक देवी-देवता, जिनके नाम को मनुष्य मंत्रों के रूप में जपता हुआ उनको स्मरण रखने के लिए और उनकी स्मृति में रहने के लिए अपने आदिकाल से एक यत्न कर रहा है। (इंसान का यह यत्न अपने शिखर पर होता है, जब उसपर किसी अचानक मुसीबत का, महामारी का या देश में अकाल पड़ने जैसा कोई भारी संकट आ जाता है।)

यह पितृपूजा शक्तिपूजा होती है, नायक-पूजा। सो मज़हबों के बानी रूहानी शक्ति के प्रतीक बन जाते हैं, और वे लोग, जिन्होंने समय-समय प कबीलों, कौमों और देशों के लिए ज़िन्दगी कुर्बान की होती है, शारीरि

साधन होने के कारण अति आवश्यक साधन के तौर पर पूजनीय है।

इसी तरह अफ्रीका में चीता और सांप पूजने के योग्य हैं। भारत में भी सांप को गुग्गा पीर कहकर पूजा जाता है। मिथहास में सांप वर्जित ज्ञान का ज्ञाता माना जाता है। और आदिवासियों के कई कबीले अपने-आपको शेरों के वंश में से मानते हैं। भारत के आदिवासी जंगल में किसी शेर के मरने पर सगे बाप के मरने की तरह क्रिया-कर्म करवाते हैं, और तेरह दिन घर में शोक मनाते हैं।

यह पितृपूजा जो मानवीय आबादी के कई हिस्सों में पुरखों की पूजा की तरह ही प्रचलित है, या देवताओं के अवतार या वाहन समझकर ही (जैसे हंस सरस्वती का वाहन माना जाता है, गरुड़ विष्णु का वाहन, और चूहा गणेश का वाहन) पर यह मान्यता हर रूप में सिर्फ एक ही विश्वास की पुष्टि करती है, इंसान को अपनी रक्षा के लिए, किसी बड़ी शक्तियों का भरोसा चाहिए होता है।

पितृपूजा का इतिहास उतना ही लम्बा है, जितना इंसान की उन ज़रूरतों का, जिनकी पूर्ति उसकी सीमित शक्ति से परे होती है। और जिसके लिए वह अपार शक्तियों से समय-कुसमय पर बल मांगता है। सो, मांगने की जगह पर खड़े होकर, स्वाभाविक है कि उसमें भय का [illegible] अंश हमेशा बना रहता है। मनुष्य की सोच केवल देवी-देवताओं के [illegible] से ही सम्बन्धित नहीं, अपने खून-मांस के रिश्ते से अपने जैसे साधा[illegible] सम्ब[illegible] है। खास [illegible] हों, [illegible] जो स्वाभाविक मो[illegible]

और वह अपने जैसे साधारण मनुष्य की रूहों को बदलाखोर देखकर उनसे भय खा जाता है।

इस भय के कई रूप दुनिया में दिखते हैं। जैसे किसी जादू के टोने। घर का दरवाजा चाहे कितना बड़ा हो, पर मरे हुए इंसान को, उसमें से नहीं, घर की दीवार का एक हिस्सा गिराकर, उस राह से बाहर निकालते हैं। और फिर दीवार लीपकर उसके फिर लौट आने की राह बन्द कर देते हैं। जैसे लौट आने की राह सिर्फ उसके लिए केवल वही एक हो सकता है, जिस राह से वह बाहर गया था।

पितृपूजा के लिए जहां घर का एक हिस्सा, कोई चौतरा या दीवार का एक आला, हमेशा सुरक्षित रखा जाता है, ताकि उसकी आत्मा हमेशा वहां बसती रहे, यह उससे बिलकुल विपरीत कर्म है। यह घर से हमेशा के लिए उसकी विदाई की कामना है। आत्मा की वापसी को रोकने के लिए चीन में घर की छत में एक मोकला निकालकर उसकी रूह के जाने के लिए राह बनाई जाती है, और छत को लीपकर उसकी वापसी की राह बन्द कर दी जाती है।

इस तरह जो लोग, किसी को अन्तिम विदाई देने की रस्म के लिए श्मशान घाट तक जाते हैं, वे जिस रास्ते से जाते हैं, उस राह से लौटते नहीं। लौटते समय राह बदल लेते हैं। या लौटते समय अपने पैरों के निशान मिटाते जाते हैं।

साइबेरिया के कुछ कबीले ऐसे हैं, जो कब्र को भरकर जब रोते हैं, तो जानवरों की आवाजें निकालते हैं, ताकि मरे हुए आदमी की रूह को उनकी पहचान में भुलावा हो जाए, और वह यह न समझे कि जो लोग मुझे अभी भी याद करते हैं, मेरे बिना रो-रोकर दुखी हैं, मुझे उन लोगों के पास लौटना चाहिए।

आस्ट्रेलिया के आदिवासी कब्र के गिर्द उगे पेड़ों पर एक खास निशान लगा जाते हैं, ताकि रूह जब कब्र में से उठकर घर लौटने लगे, तो पेड़ों के निशानों से राह खोजती पेड़ों के घेरे में ही घूमती रहे।

कई कबीलों में इसके बड़े भयानक रूप हैं—वे किसी को दफनाने से पहले उसका सिर धड़ से काटकर अलग कर देते हैं, या मरे आदमी की टांगों की हड्डियां तोड़ देते हैं, ताकि उसकी रूह जब कब्र में से उठकर चलने लगे, तो

चलने योग्य न रहे।

आस्ट्रेलिया के कई कबीले ऐसे हैं, जो मरने वाले का नाम नहीं लेते। विश्वास किया जाता है कि अपना नाम सुनकर मृतक की आत्मा वहां आ जाती है।

दक्षिणी अमेरिका में तो मरने वाले का सारा परिवार अपना-अपना नाम बदल लेता है, ताकि मृतक की आत्मा उनके बदले हुए नामों से उनकी पहचान भूल जाए। कई जगहों पर सिर्फ घर के लोग नहीं, पड़ोसी घरवाले भी अपना-अपना नाम बदल लेते हैं।

यह विश्वास तकरीबन है कि मृतक की आत्मा तेरह दिन तक घर में रहती है, पर जब उसे अपने पुनः-प्रवेश के लिए अपना शरीर नहीं मिलता, तो वह निराश वहां से चली जाती है।

तिब्बतियन विश्वास के अनुसार मौत और पुनर्जन्म के बीच ४६ दिनों का फासला होता है, इसलिए ४६ दिन रूह की रहनुमाई के लिए पूजनकर्म किया जाता है।

यह सब कुछ अजीब है, निर्मोही-सा लगता भी इस बात की हामी जरूर भरता है कि मरे हुओं का रिश्ता जीवित लोगों से टूटता नहीं। और शायद भयानक हद तक ये यत्न भी इसलिए हैं कि जो नहीं टूटता लगता उसे किसी तरह तोड़कर या तोड़ने का भुलावा खाकर जो अभी जीते हैं वे जिन्दगी के कामकाज में लग सकें।

ये सब कर्म मनुष्य के मन की भयभीत हालत के हैं। जहां वह भयरहित है, और पितरों को शक्तिदाता समझकर पूजता है, वहां उसके सारे प्रतिकर्म खूबसूरत हैं। नाच और संगीत से भरे हुए, मन की शायरी से भरे हुए, और अक्सर मन के उन ऊंचे विचारों से भरे हुए, जहां उसे अपनी करनी और कथनी का अन्तर पाप लगता है। और जब वह सच और संयम के बिना स्वयं ही अपनी पूजा को अकारथ समझ लेता है।

इंसान किसी सीमा तक देवी-देवताओं से भी भय खाता है, पर किसी बदले की भावना उनके साथ नहीं जोड़ता। सिर्फ अपनी लापरवाही से हुए उनके रोष की या ताड़ना की कल्पना करता है, पर साथ ही उसकी हर खता को माफ कर देने वाले उनके दैवी स्वभाव में विश्वास रखकर; और कुछ प्रयत्न

से उन रूठे हुओं को फिर से मना लेने का विश्वास धारकर। सो, उनका पितृ-पूजा का कर्म अनियमित हो सकता है, बेअदब कभी नहीं होता।

जहां तक मनुष्य का मौत से अस्वीकृत होने का सम्बन्ध है, उसका सबूत सिर्फ यह पूजा नहीं, प्राचीन समय में लाशों को सभालकर रखना भी होता था, जैसे ईजिप्ट में मम्मी रखे जाते थे। जिस्मों को साबुन और अडोल कब्रों में रखे रखने के पीछे भी यही एतकाद है। और कई पुरातन कबीलों में मरने वाला वैरी कबीलों के हाथ न लग जाए, अपने कबीले का हिस्सा ही रहे, यह सोचकर उसकी लाश को सारा कबीला बांटकर खा लेता था। और इस तरह उसको अपने-अपने जिस्म का भाग बना लेता था।

मरने वाले के अंग लगी चीजें अभी तक सभालकर रखने का विश्वास है, यह सोचकर कि उसका 'कुछ' इन वस्तुओं में देखने और छूने की हद तक, अभी दिखती दुनिया का हिस्सा है।

पुनर्जन्म भी इसी विश्वास का एक हिस्सा है। यह सिर्फ एक 'भावयविरा यथार्थ' है या कुछ और, इस विस्तार में जाने की जरूरत नहीं; पर यहां इस विश्वास की एक बड़ी दिलचस्प घटना दोहराई जा सकती है। एटलाण्टिक टापू के गर्क होने का इतिहास ढूंढ़ते हुए इतिहासकारों ने लिखा है कि यह पूरे यूरोप के कद में बड़ा टापू ईसा काल से दस हजार वर्ष पहले तकनीकी उन्नति के पक्ष से ऐसा टापू था, जिसके वासी महाबली थे। वहां एक ऐसी शफ़ाफ़ चट्टान थी, जिसके द्वारा उन्होंने सूरज की शक्ति जोड़ ली थी। बिजली भी पैदा की थी, हवाई जहाज भी बनाए थे। वे लोग सिर्फ एक ही देवता की पूजा करते थे—ताकत के देवता की। और पुनर्जन्म की बात करते हुए उसके बारे में एडगर कायस (Edgar Cayice) ने लिखा है, "हिटलर और स्टालिन एटलाण्टियन्ज आत्माओं का पुनर्जन्म थे।"

पितृपूजा के स्थान आदिकाल से मनुष्यों की बसती-रसती दुनिया का हिस्सा हैं—एक साधारण पत्थर के टुकड़े, दीवार के आले और साधारण कब्र से लेकर, इमारतकारी, बुतकारी और चित्रकारी की बढ़िया से बढ़िया रूप में। पर पितृ-पूजा का एक स्थान कुछ वे चिह्न भी हैं, लकीरों, शक्लों, अक्षरों और अंकों के रूप में, जो सिर्फ कुछ विद्वानों की स्मृति में हैं, और कभी-कभी किसी जरूरत-मन्द की खातिर कागजों पर उतरते हैं। उनमें आदिकाल से एक दिव्य शक्ति

समझी गई है, जिसका जाप या तावीज़ की शक्ल में स्पर्श, मनुष्य को अपनी शक्ति का कुछ हिस्सा देकर, उसकी जरूरतों को पूरा करता है। तांत्रिक विद्या भी उसीपर आधारित है, और हिब्रू विद्वानों की अलग-अलग अक्षरों और नम्बरों में ख़ास-ख़ास तरह की निश्चित ताकत वाली रवायत भी।

और इसी तरह दुनिया का साहित्य भी पितृपूजा का एक स्थान है जहां आज भी 'जुज़ अपनी तो जुदा कितोई, तेरियां कीतियां मत्थे धारियां' का विश्वास लेकर, और 'मेरे हाल दा महरम तूं' और 'नाम अल्लाह दा सब तो चंगा' मानकर कई शायर अपनी रचना का आरम्भ उस आदि पितृ की पूजा से शुरू करते हैं, जो मौत-रहित है, और इसलिए जन्म-मरण के चक्र से स्वतंत्र है। जैसे 'जदों इश्क दे कम नूं हत्थ लाइए पहलों रब दा नाम ध्याइए जी।'

इसी तरह कुदरत की—सूरज, पानी, अग्नि और पवन जैसी शक्तियों की स्तुति, सराहना और उनके प्रति देवी-देवताओं की आराधना भी साहित्य का हिस्सा होती है। आज भी हर देश के लोकगीतों में ऐसी भावना मिलती है, जो सूरज को कहती है, 'जो कोई तेरा दर्शन करदा उसदे मत्थे भाग', चांद को कहती है, 'भागी भरया सुख दा चढ़ी! खैर दा चढ़ी!' पानी को कहती है, 'जल मिलया परमेशर मिलया मेरे तन दी गई बला।' और संध्या के समय दिये की लौ के आगे माथा निवाकर कहती है—'दीवे तेल विछड़े मेल। दीवे वट्टी, आवे खट्टी।' और इसी तरह यह भावना अपनी-अपनी भाषा में रखे गए देवी-देवताओं के—ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु और शिव जैसे नामों को जपती है।

मजहबों के बानी भी हमेशा अपने-अपने मजहब के शायरों की कलम का हिस्सा होते हैं। शायर कभी उनको सिर्फ पूजा, इबादत के यकीन में से स्मरण करते हैं, और कभी कौमों या देशों की किसी जरूरत के समय। जैसे पंजाबी साहित्य में वारिसशाह हज़रत मुहम्मद के चार खलीफों की स्तुति करता हुआ लिखता है, 'चारे मार रसूल दे चार गौहर, सब्बे इक थीं इक चढ़दड़े ने' और पंजाब के लोकगीत निजी खुशियों को गाते हुए कहते हैं 'गुरू ध्याके मैं पावां बोली।' इन लोकगीतों में कई बार तो मज़हबों के वितकरे भी मिट जाते हैं। सब गुरु-पीर शक्ति का सम्मिलित चिह्न हो जाते हैं। जैसे पंजाब की एक बोली है, 'देवी दी मैं करां कड़ाही, पीर फकीर ध्यावां, हैदर शेख दा देवां बकरा, नंगे पैरी जावां, ते हनुमान दी देवां मन्नीं, रती फर्क न लिआवां।'

हर साहित्य में इन शक्तियों को समय-समय पर स्मरण करने की अनेकों मिसालें है, जैसे पंजाबी साहित्य में जगती ज्योति वाली की पूजा करते हुए पंजाब की औरतें चिन्तपूरणी से दूध और पूत की आस करती हैं, और गुरु गोरख को 'इक सलामा मेरिया दोए सलामा गुरु गोरखा।' कहकर मुराद मांगती हैं—'साल्नू वी दयो जी औलाद!"

आध्यात्मिक शक्तियों के प्रतीक भी पूजे जाते हैं, जैसे भारतीय साहित्य में सिद्धों और नाथों की पूजा है, और राम, कृष्ण या बुद्ध की पूजा है। इसी तरह समय-समय पर हुए राजा और योद्धा भी साहित्य के नायक होते हैं। राजाओं की तारीफ में विरद, और बहादुरों की तारीफ में वार लिखी और गाई जाती है।

कौमों के मुखिया भी हर देश में नायक होते हैं जैसे भारत के ताजा साहित्य में गांधी एक नायक हैं। यह नायक प्रथा कई बार देशों और जबानों की सीमाएं भी मिला देती है, जैसे लेनिन को नायक मानकर उसके बारे में कई देशों के साहित्यों में उसे चित्रित किया गया है।

और जहां तक प्रेम-कहानियों के पात्र हर साहित्य में समय पाकर नायक बनते हैं, उससे तो हर भाषा का साहित्य भरा हुआ है। यह शायद इसलिए है कि उनकी वार्ता में इंसान अपने को सबसे ज्यादा पहचानते हैं। और अपने अपूर्ण सपनों को चुप की छाती में से निकालकर, कुछ देर के लिए आवाज को दुनिया में ले जाते हैं। और शायद कुछ घड़ियों के लिए उनका अपना अनकिया जेरा उन दूसरों के जेरे में पनाह ढूंढ लेता है।

जहां तक पितृपूजा के स्थानों का सवाल है, उनकी बनावट में जरूर फर्क होता है, पर उनके निर्माण में निहित भावों में फर्क नहीं होता। ईश्वर को सर्वव्यापी मानकर किसी भी रूप में पूज लिया जाता है। पर कुदरत की शक्तियों के लिए और उनके प्रतीक देवी-देवताओं के लिए मंदिरों जैसे स्थान बनाए जाते हैं जहां सोने जैसी महंगी से महंगी वस्तु, फूलों जैसी कोमल से कोमल वस्तु, और अन्न-फल जैसी जरूरी से जरूरी वस्तु चढ़ाकर, उनको पूजा जाता है।

हर मजहब के बानी के लिए भी ऐसा स्थान बनाया जाता है, पर जिसका बाहरी रूप एक दूसरे से अलग रखा जाता है, जो मनुष्य ... में ... के लिए सम्बन्धित हो जाता है, गिरजे, मंदिर, मस्जिद

उसके साथ ही हर संचालक के अपने मुंह से कहे गए शब्दों को, या उसके हाथों लिखी रचना को, उसका स्थान समझा जाता है, जिसके आगे अपने-अपने विश्वास के अनुसार बन्दगी की जाती है। जो आध्यात्मिक शक्तियों के प्रतीक कोई सिद्ध पुरुष होते हैं, उनकी समाधियों या कब्रों को पूजने के योग्य समझा जाता है और वहां दिये जलाकर दूध या फल-फूल जैसी वस्तु चढ़ाकर मन्नतें मानी जाती हैं।

जो योद्धा होते हैं, उनके लिए मीनार जैसा कोई स्थान बनाकर उनको आदर योग्य माना जाता है, और वहां गाहे-ब-गाहे फूल चढ़ाए जाते हैं। जो कौमों के बानी होते हैं, उनके लिए कोई अलग जगह बनाकर उनकी यादगार बनाई जाती है और फूलों से सजाई जाती है। उनके यादगार-दिवस जलसों और जुलूसों के साथ भी मनाए जाते हैं।

जो प्रेम-कहानियों के पात्र होते हैं, उनकी समाधियां या कब्रों को ढूंढ़कर उनपर दूध या फल-फूल चढ़ाकर उनको पूजा जाता है।

और जो सिर्फ निजी रिश्ते से पितृ होते हैं, उनके लिए या तो घर का कोई छोटा-सा हिस्सा, चाहे एक आला ही, सुरक्षित रख लिया जाता है, या सिर्फ बरस का वह दिन जो उनके बिछुड़ने का दिन होता है, उस दिन उनकी याद में कुछ ज़रूरतमन्द लोगों को या जानवरों को कुछ खिलाकर अपनी कमाई का कुछ हिस्सा उन तक पहुंच गया समझा जाता है। और उस दिन उनकी अपने बीच उपस्थिति भी मानी जाती है; चाहे वह उपस्थिति साधारण आंखों से किसीको नहीं दिखती।

सो, ये पितृपूजा के वे स्थान हैं, जो हमारी दुनिया का बसते-रसते घरों की तरह एक हिस्सा हैं। पर एक, जिसको शायद सबसे बड़ा कह सकते हैं, स्थान वह है, जो कहीं बाहर नहीं होता, वह सिर्फ मनुष्य की अपनी छाती में होता है। उसके अचेतन मन में, जहां सदियों से पितरों का इतिहास जुड़ा होता है और जिसमें सदियों का वह तजुर्बा सोया रहता है, जो अपने-आपमें एक बेपनाह शक्ति होता है। चेतन मन आज की हालतों से, आज के तजुर्बों से, और आज के हासिल किए हुए ज्ञान से बना होता है, जिसकी अपनी तरह की प्राप्ति होती है और अपनी तरह की एक सीमा। पर अचेतन मन सदियों के तजुर्बों का जोड़ होता है, एक असीम शक्ति, जो चमत्कार की हद तक आज की सीमित समझ

से बाहर होती है।

इस अचेतन मन की शक्ति को पहचानने के लिए कोलिन विल्सन ने, क्रिश्चियन विश्वास में जो मनुष्य का बुनियादी गुनाह गिना गया है, उसको बड़े नये अर्थों में पेश किया है, 'हम, तुम और ये, उससे कहीं ज्यादा ताकतवर हैं जिसे हम स्वयं कभी नहीं जानते। और यही बुनियादी गुनाह है।" सो इस अपनी ही शक्ति को न जानना गुनाह है।

चेतन मन किसी शक्ति को बरतने का माध्यम है, सिर्फ माध्यम नहीं, उसके सही प्रयोग की पहचान भी, और प्रयोग के मतव्य का निर्णय भी। पर अचेतन मन शक्ति का स्रोत है। सब चिन्तनों का एक वह स्थान, जिसकी मनुष्य ने अभी सही अर्थों में पूजा करके नहीं देखी, और न चेतन यत्न से उसका [illegible] पास से अपनी ही शख्सियत के हुस्न की मुराद पाई है।

यहां 'पूजा' शब्द, चेतन मन का दलील के सहारे अचेतन मन के शरीर को बरतने के अर्थों में है।

सपने अचेत मन के प्रकटीकरण का सबसे बड़ा माध्यम होते हैं—आंखों-देखे और कानों-सुने अर्थों की तरह इनके अर्थों को अंधेरे में से निकालकर चेतन की रोशनी में ले आना, किसी के लिए भी अपने स्वयं की पहचान के लिए सचमुच बड़ा सहाई हो सकता है।